पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि
त ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ
ी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-
लगेगा।

द्रोणाचार्य्य

प्रकाशक

भीष्म एंड ब्रादर्स।

वीर-चरित-माला संख्या १

द्रोणाचार्य्यजी की जीवनी

लेखक

पं० रामरत्न त्रिपाठी

प्रकाशक

भीष्म एन्ड ब्रादर्स

पटकापुर, कानपुर ।

प्रथम वार	१९७३	मूल्य
२००० प्रति		।=)

Printed by L. Chheda Lall at the Merchant Press, Cawnpore.

❀ प्रकाशक का निवेदन ❀

हम लोगों का विचार है कि संसार के और विशेष कर भारतवर्ष के जितने वीर योद्धा और विजयी हो गये हैं उन सबके जीवनचरित प्रकाशित करें । इसी विचार को सामने रख कर भारतगुरू द्रोणाचार्य्यजी की जीवनी आपके सन्मुख उपस्थित की जाती है । इसके पश्चात् अन्य देशों के कुछ संसार विजयी महापुरुषों के संक्षिप्त जीवनचरित एक साथ प्रकाशित किये जांयगे । उसके बाद तीसरी पुस्तक में भारतवर्ष के किसी वीर की जीवनी प्रकाशित की जायगी । परन्तु हमारे सारे मनोर्थ तभी सफल होंगे जब आप इस काम में हमारा हाथ बँटावेंगे । आइए हम सब मिलकर मातृभाषा तथा मातृभूमि की सेवा करें ।

प्रकाशक ।

द्रोणाचार्य्य की जीवनी।

उत्पत्ति समय।

द्वापर के अन्त में जिसे लगभग ५ सहस्र वर्ष हुए भरद्वाज ऋषि के गृह में हमारे चरित्रनायक का जन्म हुआ। भरद्वाज ऋषि ने इस आनन्द सूचक समाचार की सूचना आश्रम निवासी स्त्री पुरुषों को दी।

एक तो कोयल और भौरों की मधुर ध्वनि से गुंजायमान और अनेक प्रकार के फल पुष्प सम्पन्न वृक्षों से युक्त सब प्राणियों को आनन्द देने वाला आश्रम दूसरे बालक के जन्मोत्सवमें आश्रम वासी स्त्री पुरुषों, ब्रह्मचारी और अध्यापकों के समाज का दृश्य अलौकिक दृश्य था। सभी के हृदय से आनन्द छलका पड़ता था। ऋषि ने सब का यथा योग्य सत्कार किया। सभी ने बालक को आशीर्वाद दिया कि यह आयुष्मान् विद्वान् और ब्रह्मवर्चस्वी हो।

पालन-पोषण।

जीवन के लिए स्वच्छ वायु जल और दुग्ध आदि पदार्थों की आवश्यकता होती है। इनकी आश्रम में कमी न थी। दूसरे भरद्वाज ऋषि आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे। इन्हीं कारणों

से वालक का शरीर शुक्लपक्ष के चन्द्र की भांति बढ़ने लगा और कोई संक्रामक रोग उसके शरीर को न सता सका* । ऋषि पुत्र कान्तिमय और होनहार होने के कारण प्रत्येक देखनेवाले का ध्यान अपनी ओर खींच लेता था। माता पिता भी अपने पुत्र को प्रसन्न देख कर मन में फूले न समाते थे। एक दिन शुभ मुहूर्त में ऋषि ने वालक का नामकरणसंस्कार किया। सभी इष्ट मित्र सम्बन्धी उपस्थित हुए और वालक का नाम द्रोण रक्खा गया।

गुरुकुल प्रवेश।

जब द्रोण सात वर्ष के हुए तो माता पिता ने पुत्र का यज्ञोपवीत और वेदारम्भ सँस्कार करके कुल परिपाटी के अनुसार उसे गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। माता पिता ने होनहार पुत्र बनाने के लिए बालक के हृदय में जिन जिन प्रभावशाली सँस्कारों का प्रभाव डाला था उनके विकास का समय आया। द्रोण, तीव्र बुद्धि, सदाचारी, आज्ञाकारी और विनीत होने के कारण गुरु के प्र.णपुत्र हो गये।

गुरुकुल का प्रभाव।

द्रोण के सहपाठी अधिकतर क्षत्रिय राजाओं के बालक थे।

*आज कल भारतवर्ष में बालकों की मृत्यु ४५ सैकड़ा है। इसका कारण माता पिता की मूर्खता और उत्तम जल वायु और दूध आदि पदार्थों का न मिलना है।

द्रोण के हृदय पर उनकी संगति का विशेष प्रभाव पड़ा। उनको अपने पिता की वन की अवस्था अच्छी न लगने लगी और राज-महल के स्वप्न उनके मनको अपनी ओर खींचने लगे।

पांचाल नृपति के पुत्र द्रुपद सारे सहपाठियों में द्रोण से गहरा प्रेम रखते थे। क्योंकि इनको विद्या धन प्राप्ति करने में द्रोण से विशेष सहायता मिलती थी इसलिए दोनों के हृदय एक हो गये थे।

द्रोण और द्रुपद की बातचीत।

द्रोण—हे द्रुपद ! हमारा आपका क्या साथ। मैं ब्राह्मण और आप क्षत्री, मैं एक निर्धन तपस्वी का पुत्र और आप राजा के प्राण प्रिय पुत्र। मैं वन में रहनेवाला वनवासी आप राज-भवन में विश्राम करनेवाले राजकुमार। मैं भूख लगने पर वन में पृथ्वी के नीचे कंद और वृक्षों के ऊपर फल फूल तोड़ता फिरूंगा और आपके सङ्केत मात्र से सब सुख की सामग्रियां एकत्रित होंगी। इसलिए हे द्रुपद हमने और आपने मैत्री करके कोई उत्तम कार्य नहीं किया।

द्रुपद—हे मित्र ! जहां सत्य प्रेम होता है वहां सब कुछ निछावर कर दिया जाता है। विश्वास रखिए जब मैं राजा होऊंगा तो आधा राज्य आपको देकर मित्रता का व्योहार निबाहूंगा।

क्षत्रियों के यहां तो सैकड़ों मनुष्य व्यर्थ ही में आनन्द किया करते हैं और आप तो मेरे पूजनीय आचार्य्यजी के सुपुत्र परम प्रिय मित्र हैं। मैं सारी सम्पति आपके चरण कमलों पर निछावर करदूंगा और सदैव ऐसा प्रयत्न करता रहूंगा कि आपको किसी प्रकार का कष्ट न मिले। यदि किन्हीं कारणों से मुझे राज्यपद न मिला तो मैं भी आपके साथ वन में रह कर आपके समान कन्द और फलों से निर्वाह कर जीवन व्यतीत करता हुआ मित्र के प्रेम रस का स्वाद चक्खूंगा।

द्रुपद की इन मनोहारिणी बातों ने द्रोण की आशायें अधिक बलवती कर दीं और यह निष्कपट ब्राह्मण पुत्र राज्य प्राप्ति के मन मोदक उड़ाने लगा।

शिक्षा का समय पूर्ण हो गया। सारे ब्रह्मचारी अपने अपने घरों को पधारे। किन्तु द्रोण वहीं अपने पिता के आश्रम में निवास कर ज्यों त्यों जीवन व्यतीत करने लगे।

विवाह।

द्रोण पिता के आश्रम में एक अध्यापक की भांति कार्य्य करने लगे। इनकी विद्या का विकास चारों ओर फैल गया। आयु भी विवाह के योग्य थी। इस कारण इनके विवाह की चर्चा चारों ओर होने लगी। कौन ऐसा पुरुष होगा जिसके घर में विवाह के

योग्य कन्या हो और वह ब्राह्मण कुल के सूर्य्य भरद्वाज के पुत्र विद्वान् द्रोण के साथ उसका विवाह करने की अभिलाषा न रखता हो। परन्तु द्रोण का मन पहले ही से इसके प्रतिकूल था। उनका यह विचार था कि जब तक मनुष्य धनागम का द्वार न खोल ले तब तक वह विवाह करने का अधिकारी नहीं है। क्योंकि दरिद्रता सारी आपदाओं का घर है। इनके माता पिता सोचा करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे एक मात्र पुत्र द्रोण का मन विवाह की ओर से हट जावे। इसलिए वे द्रोण के साथ विवाह के लिए विशेष आग्रह किया करते थे। अन्त में द्रोण को बहुत कुछ वादानुवाद के पश्चात् अपना विचार परिवर्तनं करना पड़ा और इनका विवाह श्रीमती कृपी देवी के साथ हो गया इससे ये सन्तुष्ट भी रहे।

श्रीमती कृपी देवी जी।

श्रीमती कृपी देवी जी महात्मा कृपाचार्य्य की बहिन थीं। महात्मा कृपाचार्य्य प्रसिद्ध कौरव कुल के आचार्य्य थे। देवीजी विदुषी, योग्या और गृह कार्य्यों में सुदक्षा थीं। इनकी सहन शीलता मृदुभाषिता और उत्तम व्यवहारों से सास श्वसुर ही नहीं वरन सारे आश्रम निवासी मुग्ध हो गये। रहने को तो ये आश्रम ही में रहती थीं परन्तु इनका ध्यान हस्तिनापुर में लगा रहता था। इन्हें भाई के घर के सुखों को त्याग कर आश्रम का

रहना भला न जान पड़ता था । यही कारण था कि ये बहुधा शोकित रहती थीं । विचारे द्रोण तो पहले ही से उदास थे किन्तु कृपी देवी की उदासी ने जलती हुई अग्नि में घृत का काम किया । जब तक भरद्वाज जी जीवित रहे तब तक विवश हो इन्हें आश्रम ही में रहना पड़ा ।

पिता का देहान्त ।

द्रोण आश्रमबासी दूसरे ब्राह्मणों से अधिक दीन थे । क्योंकि उद्योग और परिश्रम को छोड़ कर भिक्षा वृत्ति से जीवन निर्वाह करना द्रोण की प्रकृति में न था । पहले अध्यापक वृत्तिं से प्राप्त हुए धन के द्वारा वे ज्यों त्यों करके अपना कार्य्य चलाया करते थे । अब गृहस्थ बन जाने के कारण उनको आवश्यकतायें और भी अधिक सताने लगीं ।

भरद्वाजजी ने जीवन कार्य्य समाप्त करके मृत्यु शय्या पर लेट कर अपने पुत्र को उपदेश दिया :—

हे पुत्र ! अब मैं ऐसे स्थान को जाता हूं जहां हमारा तुम्हारा पिता पुत्र का सम्बन्ध न रह सकेगा । यही नियम परम्परा से चला आया है । इसलिए विद्वज्जन ऐसे समय में शोकाकुल नहीं होते । सृष्टि को स्वर्ग धाम बनाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । मैं अपना कर्तव्य पालन कर चुका । तुम्हारा जन्म मेरे सम्बन्ध से हुआ है । मैंने तुम्हें प्रत्येक प्रकार से योग्य बना कर अपना पितृ

धर्म्म पालन किया है। ईश्वर की कृपा से तुम विद्वान्, वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता और देश काल के मर्म्मज्ञ हो। तुम जानते हो कि द्वापर समाप्त होनेवाला है और बहुत से कार्य्य देश काल के विरुद्ध होने लगे हैं। इसलिए अब निस्वार्थ काम करनेवाले सच्चे ब्राह्मणों की ज़िम्मेदारी बढ़ गई है। मेरे पश्चात् तुम्हारा कर्तव्य होगा कि देश और जाति की बुराइयों को अपने तेज और विद्या के बल से दूर करते रहो। हमें आशा है कि तुम गुरुकुल में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को योग्य और धर्मात्मा बनाने में पूर्ण उद्योग करोगे।

हे पुत्र ! यदि तुम अपनी सारी शक्तियां धर्म्म और कर्तव्य के पालन में लगा दोगे और ऋषियों, आचार्य्यों, पुरोहितों, जाति के निःस्वार्थी सेवकों और धर्म्मानुरागियों की पवित्र संस्थायें नियत कर दोगे तो देशप्रेम और सहानुभूति को स्थिर रख सकोगे और तभी तुम्हारा जीवन भी सफल होगा।

हे द्रोण ! देखो इस समय देश में बुराइयों के अङ्कुर फूट रहे हैं जो देश की अधोगति के अग्रसूचक हैं। देश के कष्टों, अत्याचारों और दुराचारों की ज़िम्मेदारी ब्राह्मणों की गरदन पर है।

हे पुत्र ! माता मनुष्य को पशु का जीवन देती है किन्तु ब्राह्मण उसे विद्या दान दे कर पशु जीवन से मनुष्य जीवन प्रदान करता है। इसलिए आचार्य का धर्म है कि वह देश में धर्म्मात्मा मनुष्यों को उत्पन्नकर धर्म्म को कुचलनेवाले अत्याचारी मनुष्यों को साहस-

पूर्वक दमन करे । ईश्वर से ले कर पृथ्वी पर्य्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान करा कर देश में विद्या की ज्योति जागृत कर उसे धन धान्य से पूर्ण कर दे।

जो कुल कलङ्की ब्राह्मण धर्म्म मर्यादा से विमुख हो केवल भिक्षा वृत्ति ही से ब्राह्मणत्व को धारण करना चाहता है वह कुल और देश का शत्रु है। वह भविष्य में उठनेवाली सन्तानों के लिए विष का वीज बोता है तथा धर्म्म मान और गौरव का नाश करता है।

हे पुत्र! पृथ्वी तुम्हारी माता है। जिस प्रकार माता अपने उदर के दूध से बच्चों का पालन करती है उसी प्रकार पृथ्वी माता भी अपने पेट से अनेक प्रकार के धन धान्य उत्पन्न कर अपने बच्चों का पोषण करती है। इसलिए पृथ्वी माता पर होनेवाले अत्याचारों का मूलोच्छेद करना और उसे सुख शान्ति देकर स्वतंत्र बनाना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है। वही सच्चा ब्राह्मण है जो पृथ्वी माता की वेदना को अपने हृदय में अनुभव करता रहे।

हे द्रोण! तुम ब्राह्मण कुल के सूर्य्य हो इसलिए मैं तुमको सच्चा ब्राह्मण बनने का उपदेश देकर तुमसे विदा होता हूं।

यह कहते हुए भरद्वाजजी ने नेत्र मूंद लिए और ईश्वर में आत्मा को युक्त कर मुक्तिधाम को चले गये।

अब भरद्वाज की सारी ज़िम्मेदारी द्रोण पर डाली गई और भविष्य के लिए उन्हें आचार्य्य की पदवी दी गई।

भरद्वाजजी का मृत्यु शोक ।

भरद्वाजजी के देहान्त होने पर सारे देश ने शोक मनाया। आचार्य्य की मृत्यु से ब्राह्मण कुल में अन्धकार छा गया। सबों ने प्रकट किया कि परोपकारी, निस्वार्थी ब्राह्मण एक एक करके मरते चले जा रहे हैं और इनका स्थान पूर्ण करनेवाला कोई मनुष्य नहीं दिखाई देता।

हा परमात्मन् ! सचमुच भारत के बुरे दिन आने वाले हैं। अवश्य ये चिन्ह किसी अधोगति के सूचक हैं। आज भारत का मुकुटमणि विद्या प्रकाशक धर्म्म प्रचारक ब्राह्मण कुल का सूर्य्य अस्त हो गया।

दीनता ।

पिता के मृत्यु शोक से निवृत्त हो द्रोणाचार्य्यजी ने गुरुकुल का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया और परिश्रम के साथ काम करने लगे। किन्तु किसी संस्था का काम उत्तमता से तभी चल सकता है जब उसकी साम्पत्तिक दशा उत्तम हो। धन की कमी का दोष इस गुरुकुल में मौजूद था और भिक्षा मांग कर धन संग्रह करना द्रोणाचार्य्य की प्रकृति में न था। इसलिए भरद्वाजजी के जीवन त्याग करने से इस प्रसिद्ध गुरुकुल के जीवन का भी अन्त हो गया।

द्रोणाचार्य्य अपने पिता की मृत्यु, गुरुकुल के अन्त और अपनी

दीन दशा को विचार कर अत्यन्त शोकित हुए। इनको इस समय पिता के शिष्य, अपने सहपाठी ही धैर्य्य बंधाने के कारण हुए। इसलिए गुरुकुल को छोड़, स्त्री को साथ ले आश्रम से चल खड़े हुए। आपके एक बालक भी पैदा हो चुका था। एक दिन स्त्री पुरुष दोनों परस्पर कष्टों को अनुभव करते हुए एक दूसरे से कहने लगे :—

द्रोण और कृपी की बात चीत।

स्त्री—पतिजी ! आप जानते हैं कि इस प्रकार हम कैसे जीवन के दिन काट सकेंगी। हम गृहस्थाश्रम में हैं। हम पर जाति के सैकड़ों कर्तव्य भी हैं। ऐसी दशा में आपको धन प्राप्ति के लिए कोई उचित साधन ढूढ़ना चाहिए। देखिए—

दुखड़ों की भर मार, यहां सुख साज नहीं है।
किसका गोरस भात, मुठी भर नाज नहीं है॥
भटकें चिथड़े धार, धुला पट पास नहीं है।
कुनबा भर में कौन, अधीर उदास नहीं है॥१॥
बालक चोखा खान, पान को अड़ जाता है।
खेल खिलौना देख, पिछाड़ी पड़ जाता है॥
सो मनमानी वस्तु, न पा कर रो जाता है।
हाय ! हमारा लाल, सिसकते सो जाता है॥२॥

द्रोण—हे प्रिये ! यह तो सत्य कहती हो पर क्या किया जावे। मेरी

समझ में तो कुछ नहीं आता। देखो—

सिर से संकट-भार, उतार न लेगा कोई।
मुझको एक छदाम, उधार न देगा कोई॥
करुणासागर वीर, कृपा न करेगा कोई।
हम दुखियों के पेट, न हाय भरेगा कोई॥

स्त्री—हे स्वामिन्! आपके सहपाठी कितने ही राजपुत्र हैं जो—

फूल फूल कर फूल, फली फल खानेवाले।
व्यंजन पाक प्रसाद, यथा रुचि पानेवाले॥
गोरस आदि अनेक, पुष्ट रस पीने वाले।
हैं अनेक तव मित्र, मोद से जीने वाले॥

उनके पास जाइए और अपनी दशा वर्णन कीजिए। सम्भव है वे इस कष्ट को दूर कर दें।

द्रोण—करतल कर करिबे नहीं, द्रोणाचार्य्य कहाय।
राजपुत्र क्यों चीन्हि हैं, गुरुकुल रह्यो न हाय॥

हे प्रिये! ऐसी दशा में धनागम का कोई साधन दिखाई नहीं देता।

स्त्री—तो फिर किसी राजा के यहां जाकर नौकरी ही कर लो।

द्रोण—बनो उदर हित दास नृप, भारत को आचार्य्य।
सुनि हँसिहैं मोहिं देश जन, उचित न ऐसो कार्य्य॥

स्त्री—भिक्षा हू नहिं मांगि हौ, नहिं बनि हौ नृप दास।
व्यर्थहि प्राण गवांइहौ, करि करि स्वामि उपास॥

द्रोणाचार्य्य—(थोड़ी देर सोच कर) हां स्मरण आ गया। पांचाल देश का राजा द्रुपद जो मेरा सहपाठी था अब राज-सिंहासन पर बैठा हुआ है। उसने मुझे आधा राज देने का वचन दिया था इसलिए मैं उसके पास जाऊंगा।

द्रोणाचार्य्य परशुरामजी की सेवा में।

द्रोणाचार्य्य राजा द्रुपद के पास आधा राज पाने की उमंग में जा रहे थे। अब उनको कंगाली का कुछ भी शोक न था। राज्य प्राप्ति के भांति भांति के विचार हृदय में उठने लगे। यथा—

राज्य प्राप्ति से विविध विधि, करिहैं भोग विलास।
सुख से जीवन काटिहैं, नासि दीनता पास॥
पै यदि कोउ धावा करै, राज्य देखि बलधाम।
तो हम तासों कौन विधि, करि सकिहैं संग्राम॥
धनुर्वेद यद्यपि पढ़ा, पै न पूर्ण अभ्यास।
याते चलिबो उचित है, प्रथम परशुधर पास॥

यह शोच कर द्रोणाचार्य ने परशुराम के आश्रम की राह ली और वहां पहुंच, परशुराम के सन्मुख जा हाथ जोड़कर बोले—

भगवन्! मैं महात्मा भरद्वाज का पुत्र आप का सेवक द्रोणा-

चार्य हूं । मेरे साथ मेरी पत्नी और पुत्र हैं । आप को शस्त्र विद्या का प्रभाकर समझ कर आप की शरण में आया हूं । इसलिए आप मुझको अपना शिष्य बनाकर शस्त्र विद्या सिखाइए । मैं जीवन भर आप को धन्यवाद दूंगा ।

परशुरामजी ने द्रोणाचार्य को भरद्वाज का पुत्र समझ कर अपना शिष्य बना लिया और वहां कुटुम्ब सहित रहने का प्रबन्ध भी कर दिया । एक तो द्रोणाचार्य की तीव्र बुद्धि थी दूसरे गुरू की अनुकम्पा । इसलिए थोड़े ही काल में उन्हों ने अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र बनाना, उनका चलाना, व्यूह निर्माण, सैन्य संचालन, शत्रु पर विजय प्राप्तिके नियम आदि युद्ध सम्बन्धी अनेक विषय सीख लिये।

परशुरामजी ने उन की परीक्षा ली और परीक्षा में द्रोण की बुद्धि विशालता, मन की एकाग्रता और हस्त लाघवता देखकर अति प्रसन्न हुए और पारितोषक में अनेक अमोघ अस्त्र शस्त्र देते हुए आशीर्वाद दिया कि हे पुत्र जिस प्रकार तू वेद विद्या का आचार्य है उसी प्रकार आज से तुझे लोग युद्धविद्या का भी आचार्य्य कहेंगे । अव द्रोणाचार्य मन चाही विद्या पाकर गुरु के चरण कमलों में शीश नवा आज्ञा मांग कर वहां से सकुटुम्ब चल दिये और एक आश्रम में जा कर ठहरे ।

अश्वत्थामा का दूध मांगना ।

एक दिन अश्वत्थामा अपने साथ वाले बालकों को दूध पीता

देखकर घर में आया और माता से दूध के लिए हठ करने लगा। माता बेचारी दूध कहां से लाती उसे तो रोटी के भी लाले पड़े हुए थे। किन्तु बालक की हट और ममता के कारण कृपी देवी की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। वे सोचने लगीं कि मैं एक आचार्य्य की बहिन और एक आचार्य्य की स्त्री हूं तो भी मेरा बालक दूध क्या रोटी के लिए भी तरस रहा है। करुणा करती हुई माता ने अन्दर जा कर चावल पीसे और पानी में घोल कर अपने कांपते हुए हाथ से बेटे को देकर कहा—लो बेटा दूध पीलो। जिस समय द्रोणाचार्य्य घर में आये और शान्ति चित्त से बैठे उस समय कृपी देवी ने गदगद कंठ से पुत्र के दूध मांगने का सारा बृत्तान्त कह सुनाया और बोली:—हे प्राणपते ! मुझे शोक इस बात का है कि आप वेद वेदाङ्ग और युद्ध विद्या के आचार्य हैं तो भी आप का बालक दो दो घूंट दूध के लिए तरस रहा है। मैं यह हाल आप से कहना नहीं चाहती थी पर पुत्र के प्रेम ने मुझे अधीर कर दिया है। मेरा पुत्र देख रहा है कि मेरे साथियों के घर दूध की नहरें बह रहीं हैं। फिर भला वह कैसे मान सकता है ?

इस बात के सुनने से द्रोणाचार्य्य के हृदय पर गहरी चोटलगी और आंखों से आंसू बहाते हुए कहने लगे। मैं इस दुःख को स्वयं अनुभव कर रहा हूं पर क्या करूं विपत्ति के समय कौन साथी होता है। यही विचार मुझे कहीं जाने से रोकता है। मैंने कई बार हृदय को कड़ा करके जाने का विचार किया पर नहीं जा सका।

अच्छा चलो आजही राजा द्रुपद के यहां चलते हैं।

राजा द्रुपद का दरबार।

द्रोणाचार्य्य राजधानी में पहुंच कर सीधे राज दरबार की ओर चल पड़े। उनके मस्तिष्क से तेज बरस रहा था। सुडौल शरीर, तेजस्वी मुख और गले में जनेऊ शोभा बढ़ा रहा था। इसलिए उनके दरबार जाने में किसी विपत्ति का सामना न करना पड़ा। जब वे राजसभा में पहुंचे राजा ने प्रणाम किया और आने का समाचार पूंछा। द्रोणाचार्य्य ने गुरुकुल की बात याद दिलाई किन्तु आज वह गुरुकुल के द्रुपद नहीं थे वरन् प्रतापी राजा थे। भला वह आधा राज कब दे सकते थ। उन्होंने कहा—हे विप्र! गुरुकुल में न हमारा कोई मित्र रहा है न शत्रु और न मैंने कभी किसी से ऐसी बात ही कही है। सम्भव है आप भूलते हों।

द्रोणाचार्य्य ऐसा कोरा उत्तर सुन कर बोले—हे राजन्! आप ऐसे राजा से मुझे ऐसी आशा कदापि नहीं थी। जब तक मैं अकेला रहा ऐसी आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु अब स्त्री और अश्वत्थामा नाम का एक पुत्र है। मुझे गृहस्थी के कार्य्यों ने विवश किया है इसलिए आप को मित्र जान कर आप के पास आया हूं। मेरी स्त्री और पुत्र भी आप की प्रशंसा सुनकर आप के पास आये हैं।

द्रुपद ने सूखा टकासा उत्तर दे दिया और कहा कि तुम बड़ी विचित्र मित्रता की पुकार मचाते हो। मेरे पास ऐसे मित्रों को देने

के लिए कुछ भी नहीं है। यदि आज के खाने पीने की कुछ आवश्यकता हो तो भंडारी से कह कर दिलवा दूं।

द्रोणाचार्य्य जी ने जब यह रूखा उत्तर सुना तो उनके दिल पर गहरी चोट लगी और अपना सा मुंह लेकर अपनी स्त्री के पास आ कर बोले :—

हे प्रिये! आपत्ति काल का कोई साथी नहीं। मेरा विचार झूठ निकला। मुझे आज बहुतही लज्जित होना पड़ा। दूसरों के भरोसे जीवन व्यतीत करना नर्क है। ईश्वर किसी को कंगाल न करे। आज से मैं किसी के द्वार पर भिक्षुक बनकर न जाऊंगा। अपनी भुजाओं से कमाऊंगा नहीं तो भूखा मर जाऊंगा।

हे कृपी! मुझे इस वचन विघातक दुष्ट द्रुपद की नीचता का बड़ा शोक है। इसलिए मैं इसकी नीचता का बदला इसे अवश्य दूंगा।

बेचारे द्रोणाचार्य्य को क्या ज्ञात था कि राजपाट ऐसी वस्तुयें मांगने से नहीं मिला करतीं। राजाओं से प्रतिज्ञायें भरद्वाज ऐसे ऋषि पूर्ण करा सकते थे। द्रोणाचार्य्य ने अभी सर्द गर्म समय कम देखा था। वे अपने पिता भरद्वाज के साथ केवल एक बार गये थे। भरद्वाज जहां जाते थे वहां राजा महाराजा उन्हें पुष्कल धन देकर उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े होते थे। इसका कारण यह था कि वह गुरुकुल के लिए धन चाहते थे अपने लिए नहीं। यहां तो द्रोणाचार्य्यजी सीधे अपने पेट के धन्धे को लेकर जा विराजे।

और चार दिन साथ पढ़ने से आधा राज मांगने लगे ।

द्रोणाचार्य्य और द्रुपद के व्यवहार पर एक दृष्टि ।

द्रोणाचार्य्य ।

ये सीधे ब्राह्मण थे । राजाओं की कुटिलनीति को नहीं जानते थे । इसके प्रथम इनको ऐसी परीक्षा का समय भी नहीं मिला था । जिससे ये राजा द्रुपद को प्रथम की भांति अपना प्रिय सहपाठी समझे हुए थे ।

द्रुपद ।

यह समय ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य्य जाति के पतन का समय था । इसलिए ब्राह्मणों की भांति क्षत्रिय भी दुर्गुणों का भण्डार बन रहे थे । द्रुपद भी नाशकारी विषयों से प्रथक न थे । नहीं तो ये अपने हाथों से द्रोणाचार्य्य ऐसे शिक्षा के रत्न को न खोते । यदि ये द्रोणाचार्य्यजी को उचित वेतन अथवा जागीर देते तो द्रोणाचार्य्य ऐसे कृतघ्न नहीं थे कि उसके उपकार को अपने जीवन में भुला देते वरन् अपनी विद्या की ज्योति से उसके देश को स्वर्ग समान बना देते । निस्सन्देह द्रुपद ऐसे वीर क्षत्रिय के लिए अपने मित्र के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करना विशेष लज्जाजनक दोष है । जिस प्रकार द्रोणाचार्य्यजी ने निष्काम सेवा से अपना हाथ खींच लिया था, उसी प्रकार उस समय के राजाओं

ने भी निष्काम भाव को भुला दिया था। सारांश जाति के अङ्ग छोटे बड़े सबों ने जब जातीयता के भाव को छोड़ दिया तो देश में स्वार्थता और फूट का विकास होने लगा। विनाशकाले विपरीति बुद्धिः।

देश की पुकार।

द्रुपद ने द्रोणाचार्य्य का अपमान किया है और वे साक्षात् क्रोध की मूर्ति बन कर अपनी दशा पर शोक करते हुए द्रुपद के दरबार से चले गये। यह समाचार सारे देश में विजली की भांति फैल गया। किसी ने द्रोणाचार्य्यजी को खरी खोंटी सुनाई। किसी ने द्रुपद के नाम पर फटकार भेजी। चारों ओर से यही शब्द आने लगे कि भारत से धर्म उठ गया। ब्राह्मणों की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। क्षत्रिय धन के दास हो गये। देश पर अशान्ति ने अधिकार कर लिया। दूरदर्शी ब्राह्मणों ने भारत का पद अधोगति की ओर उठता हुआ अनुभव किया।

द्रोणाचार्य्य हस्तिनापुर में।

द्रोणाचार्य्य द्रुपद से अपमानित हो हस्तिनापुर में कृपाचार्य्य के यहां पहुंचे। कृपाचार्य्य इस समय हस्तिनापुर के राजकुमार कौरव और पाण्डवों के शिक्षक थे। इन्होंने अपने बहनोई को बड़े सन्मान से लिया।

गेंद निकालना।

एक दिन एकत्र हुए राजकुमार नगर के बाहर गेंद खेल रहे थे। संयोग से उनका गेंद एक सूखे कुएँ में जा गिरा। गेंद को कुएँ से निकालने का बहुत कुछ यत्न करने पर भी राजकुमार उसे न निकाल सके। अन्त में निराश हो कर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उसी समय उन्होंने देखा कि एक दुर्बल ब्राह्मण वहीं से जा रहा है। राजकुमारों ने उसे घेर लिया और गेंद को कुएँ से निकालने के लिए उनसे सहायता मांगने लगे।

द्रोणाचार्य्य मुस्करा कर बोले—

तुम्हारे क्षत्रियपन को धिक्कार है। भरत कुल में जन्म लेकर भी यह साधारण काम नहीं कर सकते। छिः!

यह कह कर फिर बोले—

यदि तुम हमें उत्तम भोजन कराओ तो हम इन मुट्ठी भर सींकों की सहायता से तुम्हारा गेंद कुएँ से निकाल दें।

इसके अनन्तर आचार्य्यजी ने मुट्ठी भर सींके लेकर पहले एक सींक से उस गेंद को छेद दिया। फिर एक और सींक से उस पहली सींक की ऊपरी नोक को छेदा इसी प्रकार एक के द्वारा दूसरी सींक को छेद कर कुएँ के मुँह तक सींकों की एक रस्सी सी बना दी और उस गेंद को सहज में निकाल लिया।

राजकुमार इस कौशल को बड़े आश्चर्य और विस्मय के साथ आंखें फाड़ फाड़ कर देखते रहे। गेंद पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और बोले—

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? अस्त्र विद्या में आपकी ऐसी योग्यता हमने और कहीं नहीं देखी। आज्ञा दीजिये, हम आपके इस उपकार के बदले आपकी कौन सी सेवा करें।

आचार्य्य ने कहा—तुम महात्मा भीष्म से हमारा वृत्तान्त जा कर कहो वे हमें अवश्य पहचान लेंगे।

राजकुमारों ने यह बात मान ली। वे पितामह भीष्म के पास गये उन्होंने उनसे सारा हाल कह सुनाया। भीष्म ने सब बातें सुनते ही उस गुणवान ब्राह्मण को पहचान लिया। उन्हों ने अनुमान किया कि वे द्रोणाचार्य्य के सिवा और कोई नहीं। भीष्म ने उन्हें बड़े आदर से बुलवा भेजा। आने पर उनसे पूछा कि कृपाकर अपना नाम धाम बतलाइये और कहिये कि किस प्रयोजन से आप हस्तिनापुर पधारे हैं।

द्रोण बोले—हम महात्मा भरद्वाज के पुत्र हैं। हमारा नाम द्रोण है। हमने अग्निवेश ऋषि के आश्रम में और महात्मा परशुरामजी से वेद विद्या और धनुर्वेद सीखा है।

इसके अनन्तर आचार्य्यजी ने अपने जीवन की बीती हुई घटनायें कहीं। अपनी कंगाली, अश्वत्थामा बालक का दूध मांगना

और द्रुपद की नीचता का वदला लेना यही अपने आने के कारण बतलाये। फिर वोले—कहिए अब आप की क्या आज्ञा है।

भीष्म ने कहा—हे विप्र ! धनुष की डोरी को खोल दीजिए। प्रत्यञ्चा को धन्वा से उतार डालिए। कृपा करके आप यहीं सुख से रहिए। हमारे बड़े भाग्य से आप यहां आए हैं। इस राज्य में जो कुछ सुख सामग्री है उसे आज से आप अपनी ही समझिए। ये कौरव और पाण्डव राजकुमार आप ही के हैं। इन्हें धनुर्वेद सिखाइये।

भीष्म के इस शिष्टाचार से द्रोण बड़े प्रसन्न हुए और राजकुमारों को शिक्षा देना स्वीकार किया। फिर वोले—हे भीष्म ! यदि राजकुमार हमें प्रसन्न रक्खेंगे तो हम उन्हें आप के वंश के योग्य अच्छी से अच्छी शिक्षा दे सकेंगे।

भीष्म ने द्रोणाचार्य्य का बड़ा सत्कार किया। रहने के लिए धनधान्य से पूर्ण घर और जागीर में गुरुग्राम (जिसे आजकल गुड़गांव कहते हैं) दिया।

राजकुमारों की सामरिक शिक्षा।

गुरुग्राम में द्रोणाचार्य्य और राजकुमारों के निवास के लिए क्षात्रावास और पाठशाला वनवा दी गई। यह पाठशाला सामरिक विद्यालय के नाम से प्रख्यात हुई। इसमें हस्तिनापुर के राजकुमारों

के अतिरिक्त सैकड़ों राजकुमार देश देशान्तरों से आ कर सम्मिलित हुए। इस विद्यालय में विद्यार्थियों को शस्त्र विद्या के भिन्न भिन्नविषयों की शिक्षा दी जाती थी*। आचार्य्यजी का अपने सब विद्यार्थियों में से अर्जुन पर विशेष प्रेम था। अर्जुन भी गुरु के पूर्ण भक्त, कुशाग्र बुद्धि और कुशल हस्त थे। यद्यपि कर्ण अर्जुन के समान थे तो भी प्रकृति देवी ने जो मस्तिष्क (दिमाग़) अर्जुन को दिया था वह कर्ण को प्राप्त न था। गुरू के विशेष प्रेम और उसकी विशाल बुद्धि ने अर्जुन को समर विद्या का पण्डित बना दिया।

अर्जुन बड़े बुद्धिमान थे। एक दिन अर्जुन सायङ्काल के समय भोजन कर रहे थे। वायु के झोंके से दिया बुझ गया। जिससे उन्हें अँधेरे में ही भोजन करना पड़ा। भोजन कर चुकने पर उन्होंने सोचा कि आज मैंने अँधेरे ही में भोजन किया है। अँधेरा भी ऐसा था कि हाथ मारे नहीं सूझता था। परन्तु अभ्यास के कारण हाथ हर बार थाली में अन्न ही पर पड़ता था। यही नहीं किन्तु कौर भी ठीक मुँह के भीतर ही जाता था। कभी इधर उधर नहीं होता था। इससे अर्जुन के मन में अभ्यास की महिमा अच्छी

---

*हाथी घोड़े और रथ पर सवार हो कर युद्ध करना। तलवार, गदा, तोमर, प्रास और शक्ति आदि चलाना। धनुर्विद्या का पूरा अभ्यास। व्यूह बनाना। शत्रु पर विजय प्राप्ति के ढंग आदि आदि युद्ध सम्बन्धी सभी विषय बताये जाते थे।

तरह जम गई। वे अँधेरे में बाण चलाने का अभ्यास करने लगे। अर्थात् निशाने को बिना देखे ही अँधेरे में बाण चला कर उसे बेधने का यत्न करने लगे। क्यों न हो छोटी बातों ही पर ध्यान देने से बड़े आदमी बड़ा काम करने लगते हैं।

रात को धनुष का टङ्कार सुन कर द्रोण को यह बात मालूम हो गई। धनुर्विद्या के अभ्यास में अर्जुन का इतना अधिक उत्साह देख कर द्रोण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुन को गले से लगा कर कहा—

पुत्र! हम तुम्हें ऐसी शिक्षा देंगे जिससे तुम पृथ्वी में सबसे बड़े योद्धा हो। जिसमें कोई भी तुम्हारी बराबरी न कर सके।

द्रोण का एक शिष्य एकलव्य नामवाला निषाद था। यह भीलराज हिरण्यधनुष का पुत्र था। यद्यपि द्रोण ने इसको पढ़ाने से इनकार कर दिया था तो भी यह उनको गुरू मानता था। इस के विषय में महाभारत आदि पर्व में यों लिखा है—

श्लोक

परया श्रद्धयापेतो योगेन परमेण च।
विमोक्षादानं सन्धानं लघुत्वं परमापसः॥

अर्थ—इसकी गुरु में बड़ी श्रद्धा थी और पूरा उद्योगी था। यह बाणों के पकड़ने, जोड़ने और छोड़ने में बड़ी फुर्ती करता था। यह सारी बातें इसने श्रद्धा, अभ्यास और मन के लगाव से सीखीं।

एक बार गुरु की आज्ञा से सब राजकुमार हस्तिनापुर के बाहर आखेट के लिए गये। साथ में कुत्ते भी थे । जंगल में एकलव्य भी बाण विद्या का अभ्यास कर रहा था। संयोग से एक कुत्ता इधर उधर घूमता फिरता एकलव्य के पास पहुंचा और उसके मलिन वेष को देख कर भूकने लगा। एकलव्य ने अपनी परीक्षा देने का यह अच्छा मौका समझा । इसलिए उसने एक साथ सात बाण कुत्ते के मुँह में मार कर उसका भूकना बन्द कर दिया। कुत्ता राजकुमारों के पास पहुँचा। कुत्ते के मुँह में एक साथ सात बाण लगे हुए देख कर सबको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इस कारण सब राजकुमार पता लगा कर उसके पास पहुँचे। उसके अनोखे ढंग से बाण चलाना देख कर अर्जुन भी दंग रह गए। पूछने पर उसने अपना नाम एकलव्य और अपने को द्रोण का शिष्य बताया। अर्जुन के प्रेम से द्रोण ने एकलव्य का दाहिना अँगूठा गुरुदक्षिणा में कटवा लिया और उसे अर्जुन से बढ़कर न बनने दिया। शोक!

द्रोण की यह इच्छा थी कि हमारा पुत्र अश्वत्थामा सब शिष्यों से बढ़ कर रहे। इसलिए प्रति दिन पढ़ना आरम्भ करने के पहले वे प्रत्येक शिष्य को छोटे मुँह का कमण्डल देकर नदी से जल मँगाते थे। परन्तु अश्वत्थामा को चौड़े मुँह की कलशी देते थे। मतलब यह कि अश्वत्थामा जल भर कर औरों से पहले लौट आवे और अकेले में कुछ अधिक पढ़ ले। अर्जुन इस बात को ताड़ गये। वे आचार्य्य की चालाकी समझ गये । वरुणास्त्र

द्वारा अपना कमण्डल झट पट भर कर वे अश्वत्थामा के साथ ही गुरु के पास लौट आने लगे। इससे उन्होंने अश्वत्थामा के बराबर ही शिक्षा पाई और गुरु की इच्छा अर्जुन के मुकाबले पूरी न हुई।

अब विद्यालय की शिक्षा समाप्त हुई। अर्जुन धनुर्वेद में सब से बढ़ कर निकले। दुर्योधन, भीम गदायुद्ध में और युधिष्ठिर ने रथ पर चढ़ कर युद्ध करने में पूरा अभ्यास किया। नकुल और सहदेव ने तलवार चलाने में सबसे अधिक योग्यता प्राप्त की।

परीक्षा।

यथार्थ में अपने विद्यार्थियों की परीक्षा वही उत्तमता से ले सकता है जो उनका पढ़ानेवाला हो। इसलिए द्रोण ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने नीले रंग की एक बनावटी चिड़िया सामने पेंड़ की एक ऊंची डाल पर रख दी। इसके पीछे सब राजकुमारों को बुलाकर वह चिड़िया उन्होंने दिखलाई। आपने कहा—तुम सब लोगों को बारी बारी से मेरी आज्ञा के अनुसार इस पक्षी का सिर बाण से गिराना होगा। इस लिए सब लोग तैयार हो जाओ। यह कह कर द्रोण ने पहले युधिष्ठिर को बुलाया और निशाने के सामने खड़ा करके उनसे कहा—

हे वीर! पहले हमारे प्रश्न का उत्तर दो। फिर हमारी आज्ञा पाते ही बाण छोड़ना, पहले नहीं।

युधिष्ठिर ने धनुष उठाया और उस पर बाण रख निशाने को ताक कर खड़े हुए। तब द्रोण ने पूछा—

हे धर्म्म पुत्र ! तुम इस चिड़िया को देखते हो ?

युधिष्ठिर ने कहा—हां देखता हूं।

फिर द्रोण ने पूछा—

क्या तुम इस पेड़ को, हमको और जितने राजकुमार यहां खड़े हैं उन सब को भी देखते हो ?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—

भगवन् ! मैं इस पेड़ को, आपको और खड़े हुए इन राजकुमारों को भी देख रहा हूं।

यह बात द्रोण के असन्तोष का कारण हुई। उन्होंने अप्रसन्न होकर कहा—तुम इस निशाने को न छेद सकोगे। यह कह कर युधिष्ठिर को उन्हों ने वहां से हटा दिया।

इसके अनन्तर दुर्योधनादि को भी बारी बारी से निशाने के सामने खड़ा किया। सबसे वही प्रश्न किये। लेकिन ठीक उत्तर न पा कर निशाना पर बाण मारने की आज्ञा न दी।

अन्त में अर्जुन से मुस्करा कर कहा—

अब तुझे चोट करना है। इस निशाने को देख ले। मेरे कहने

के साथ ही तीर छोड़ना होगा।

इस प्रकार गुरु के कहने से उमंग में भरा हुआ अर्जुन धनुष को गोलाकार करके चिड़िया को निशाना बना खड़ा हो गया। थोड़ी देर पीछे आचार्य्यजी फिर बोले—

हे सव्यसाची अर्जुन ! क्या तुम पक्षी, वृक्ष और मुझको देखते हो ? अर्जुन ने उत्तर दिया—

केवल पक्षी को देखता हूं—

तब प्रसन्न हुए दुर्धर्ष द्रोण महारथी अर्जुन से बोले फिर कहो तुम इस शिकरे पक्षी को देखते हो ?

अर्जुन ने कहा—

पक्षी का शिर देखता हूं और कोई अङ्ग नहीं।

अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोण हर्ष से पुलकित हो बोले हे पुत्र ! बाण छोड़।

यह सुनते ही उसने बिना विचारे बाण छोड़ा और उस पैने बाण से पक्षी का सिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस कार्य्य की सिद्धि पर द्रोण ने अर्जुन को गले से लगा लिया और युद्ध में साथियों समेत द्रुपद को पराजित ही समझा।

कुछ काल पीछे द्रोण शिष्यों के साथ गंगा स्नान के लिए गये। वहां एक बलवान मगर ने स्नान करते समय द्रोण की टांग

पकड़ ली। वह छुड़ाने की सामर्थ्य रखते हुए भी अपने शिष्यों को जल्दी से पुकार कर बोले। हे वीर शिष्यो ! इस मगर को मार कर मुझे जल्दी छुड़ाओ।

वचनों को सुनते ही उसी समय अर्जुन ने अपने न रुकने वाले पांच पैने बाणों से जल में डूबे हुए मगर को ताड़न किया वह मगर बाणों से घायल होकर महात्मा की टांग छोड़ वहीं मर गया। तब आचार्य्य ने महारथी अर्जुन से कहा—हे महाबाहो ! यह बढ़िया बड़ा कठिन ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र सञ्चालन और निवारण की शिक्षा सहित ग्रहण करो। इस अस्त्र के समान संसार में कोई अस्त्र नहीं है। इसलिए शुद्ध हो कर इसे धारण करो और मेरा यह वचन सुनो—

हे वीर ! यदि तुमको कोई अमानुष शत्रु तंग करे तो उसके मारने के लिए युद्ध में यह अस्त्र छोड़ना।

राजकुमारों की बड़ी परीक्षा।

एक दिन द्रोणाचार्य्य अपने शिष्य कौरव और पाण्डवों को अस्त्र विद्या में निपुण जान कृप, सौमदत्त, वाल्हीक, भीष्म, व्यास और विदुर के सामने राजा धृतराष्ट्र से बोलेः—

हे कुरु श्रेष्ठ ! आप के कुमार विद्या प्राप्त कर चुके हैं। वह अब आप की सेवा में अपनी शिक्षा दिखलाना चाहते हैं।

यह सुन धृतराष्ट्र प्रसन्न हो कर विदुरजी से बोले—

हे विदुर ! आचार्य्य गुरुजी जैसी आज्ञा देते हैं वैसा करो। हे धर्म्म वत्सल ! मैं अपनी सन्तान को सुशिक्षित देखने के समान संसार में और कोई वस्तु प्रिय नहीं समझता हूं।

तब राजा से आज्ञा पाये हुये विदुर द्रोण के साथ बाहर गये। वहां महा विद्वान द्रोण ने अखाड़े के लिए पृथ्वी की माप की। फिर वृक्षों और झाड़ियों को दूर कराके उसे बराबर कराया। उसके उत्तर की ओर फौवारे लगवाये। तदनन्तर अपने कारीगरों से एक अति उत्तम प्रेक्षगार (नुमाइस घर) तैयार कराया। उसमें देश के मुखिया लोगों ने अपने अपने बैठने के लिए मंच बनवाये।

नियत दिन के आने पर मन्त्रियों के सहित राजा धृतराष्ट्र भीष्म और कृपाचार्य्य को आगे किये हुए रंगभूमि की ओर चले। उनके बैठने के लिए एक बड़ा ही मनोहर स्थान बनाया गया था। वह मोती और वैदूर्य मणियों से शोभित सोने का बना हुआ था। उसी में धृतराष्ट्र ने प्रवेश किया।

महा भाग गान्धारी, कुन्ती और राजा की सारी रानियां दासियों सहित राजकीय ठाठ बाट से वहां पधारीं। वे प्रसन्नता से मंचों पर चढ़ कर सुमेरु पर्वत पर बैठी हुई देवाङ्गनाओं के समान विराजमान हुईं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारो वर्ण कुमारों की अस्त्र परीक्षा

देखने की इच्छा से नगर से शीघ्र निकल कर वहां इकट्ठा हुए।

बजते हुए बाजों और लोगों के कौतूहल से वह समाज हाहाकारी समुद्र के समान प्रतीत होता था। उस समय श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत जनेऊ धारण किये, श्वेत दाढ़ी और केशों वाले, श्वेत माला और श्वेत चन्दन लगाये आचार्य्य द्रोण ने पुत्र सहित अखाड़े में प्रवेश किया। मानो मेघ रहित निर्मल आकाश में मङ्गल के साथ चन्द्रमा का प्रवेश हुआ हो। द्रोणाचार्य्य ने आकर पुरोहित से कहा अब क्या देरी है। मङ्गल कार्य्य होना चाहिए। उनकी आज्ञा से पुरोहित ने विधि पूर्वक मङ्गल क्रिया की। माङ्गलिक अनुष्ठान हो चुकने पर सेवकों ने अस्त्र शस्त्र ला कर अपने अपने स्थान पर रक्खे।

इसके पीछे राजकुमारों नें अपनी अपनी अंगुलियों में अंगुलीत्र (दस्ताने) पहिने। कमर में फेंटा कसा। पीठ पर बाणों से भरा हुआ तरकस बांधा और हाथ में धनुष लिया। सब से पहले युधिष्ठिर तैयार हो कर आगे आये। फिर जो जिससे छोटा था वह आयु क्रम से उसके पीछे आया। इस प्रकार सब रंगभूमि में इकट्ठे हुए।

युधिष्ठिर आदि कुमारों ने पहले अपने अनोखे अस्त्र प्रकट किये। चारों ओर अस्त्र ही अस्त्र दिखाई पड़ने लगे। यह देख कर किसी किसी ने मारे डर के अपना सिर झुका लिया। कोई

कोई निर्भयता से देख कर आश्चर्य्य में आ गये।

इसके अनन्तर राजकुमार तेज़ घोड़ों पर सवार हुए। वे फिर अपने नाम के चिन्हों से शोभित भांति भांति के वाणों से अपने अपने निशाने बेधने लगे। उस समय कुमारों की करतूत देख दर्शक अचम्भे में आ गये और उनकी वड़ाई करने लगे।

महाबली कुमार धनुष चलाने के अनेक मार्ग दिखा कर, विस्मित करने वाले भांति भांति के निशाने लगा कर रथ चर्य्या हाथी और घोड़ों की पीठ पर अनेक मार्गों से विचरने लगे। बाहु युद्ध में अनेक मार्ग दिखला कर फिर ढाल तलवार लेकर बढ़ बढ़ कर प्रहार करने लगे। सभी अवस्था में पैदल, घोड़े, हाथी और रथ पर गुरु के सिखाये तलवार के हाथ दिखाये। वहां दर्शकों ने ढाल, तलवार के प्रयोग में सब की शीघ्रता, चतुरता, एकही तलवार को चारों ओर घुमा कर चारों ओर से होते हुए प्रहारों को रोकना, शस्त्रों की झलक, निडर हो कर खड़े रहना और दृढ़ मुट्ठी वाला होना देखा।

अब सदा डाह वाले पराक्रमी दुर्योधन और भीम हाथ में गदा लिए हुए अखाड़े में उतरे। चमचमाती गदाओं वाले वह महाबली मत्त हाथियों की भांति दायें बायें मण्डल बनाने लगे। वे दोनों वीर सब ओर से एक दूसरे के प्रहार से बचने के लिये अपने चारों ओर घुमाने से गदाओं के गोल चक्र करने लगे।

अखाड़े में ज्यों ही दुर्योधन और महाबली भीम डट गये त्यों ही पक्षपात के कारण अलग अलग प्रेम करने वाले लोग दो भागों में बट गये। अहह बीर कुरुराज, अहह भीम, यह कहते हुए पुरुषों के अचानक बहुत ऊंचे नाद उठे। उस समय लहलहाते हुए समुद्र के समान उस अखाड़े को देख कर बुद्धिमान द्रोण अपने प्रिय पुत्र अश्वत्थामा से बोले। इन पूर्ण शिक्षित दोनों महा पराक्रमियों को हटा दो। कहीं ऐसा न हो कि इन दोनों के कारण अखाड़े में तलवार चल जाय। तब गुरुपुत्र ने गदा उठाये हुए उन दोनों को अलग अलग कर दिया।

कुमारों की यह सारी करतूतें विदुर जी धृतराष्ट्र को और कुन्ती गान्धारी को बतलाती थीं।

आचार्य्य जी अखाड़े में खड़े हो कर मेघ के समान ध्वनि वाले बाजों को रोक कर वचन बोले—

जो मुझे पुत्र से अधिक प्रिय, सारे शस्त्रों में निपुण विष्णु के तुल्य पराक्रमी अर्जुन है वह अब सामने आवे।

आचार्य्य की आज्ञा पाते ही गोह के दस्ताने पहिने, बाणों से भरा तरकस पीठ पर डाले, धनुष लिये, सुनहरी कवच धरण किये वह नवयुवक अर्जुन सामने आया। मानों सन्ध्या समय के मेघ—सूर्य्य, इन्द्र धनुष और बिजली के सहित आये हों। उस समय उन्हें देख कर सारा अखाड़ा आनन्द से भर गया। चारों ओर बाजे बजने लगे और शंखध्वनि होने लगी।

यह श्रीमती माता कुन्ती का बालक है। यह मंझला पाण्डु पुत्र है। यह अस्त्र जानने वालों में सब से बढ़ कर है। यह शील और ज्ञान का भण्डार है। यही अपने वंश का रक्षक होगा। इस प्रकार की प्रशंसापूर्ण बातें चारों ओर सुन पड़ने लगीं। यह सुनकर कुन्ती माता की छाती दूध और आंसुओं से भीग गई।

उसी समय उस महान शब्द को कानों में भरे हुए नर श्रेष्ठ धृतराष्ट्र प्रसन्न मन होकर विदुर से बोले—

हे महामते! कुन्ती रूपी अरणी लकड़ी से उत्पन्न हुए तीन पाण्डव रूप अग्नियों से मैं धन्य, अनुगृहीत और रक्षित हुआ हूं।

वह हर्ष से भरा हुआ अखाड़ा जब कुछ शान्त हुआ तब अर्जुन आचार्य्य को अस्त्रों की फुरती दिखाने लगे। आग्नेयास्त्र से अग्नि, वरूण से जल, वायव्य से वायु, और पार्जन्य से मेघों के दल उत्पन्न किये। क्षण में अन्तरध्यान, क्षण में प्रकट, क्षण में ऊंचा, क्षण में छोटा, क्षण में रथ के धुरे पर स्थित, क्षण में रथ के मध्य में स्थित, और क्षण में भूमि पर उतर आया। गुरु के प्यारे ने बड़े कोमल, सूक्ष्म और बड़े कठिन लक्ष्य को भांति भांति के बाणों से बहुत अच्छी तरह बीधा। चक्राकार घूमते हुए लोहे के सुअर के मुख में अलग अलग पांच बाण एक वाण की तरह छोड़े। रस्सी के सहारे फिरते हुए बैल की सींग की खोल में अचूक दृष्टि से बाण गाड़ दिये। इस प्रकार बाण फेंकने की विधि दिखला

कर उस निष्पाप शस्त्र निपुण अर्जुन ने तलवार की गति गदा में अनेक मण्डल दिखलाये। जिन कृत्यों को देख कर दर्शक समाज अर्जुन को साधु साधु कहने लगी।

कर्ण प्रवेश ।

जब अर्जुन की करतूत समाप्त होने को हुई, बाजों की ध्वनि भी कम हुई, उस समय द्वार देश से वज्र की रगड़ के समान महत्व और बल को बताने वाली किसी के भुजाओं की कठोर ध्वनि उत्पन्न हुई। तब सभी दर्शक द्वार की ओर देखने लगे। लोगों से अवकाश मिलने पर हर्ष से खिले नेत्र वाले, शत्रु के किलों को जीतने वाले कर्ण उस बड़े अखाड़े में प्रविष्ट हुए। बड़ा ऊंचा सोने की ताल के समान शेर की सी गठन वाला वह नवयुवा वृद्धों को अभिवादन कर अर्जुन से बोला—

हे इन्द्रपुत्र ! जो तूने काम किये हैं उन्हें मैं लोगों के सामने उत्तम रीति से पूरा करूंगा। अपने मन में घमंड मत कर। तब रणप्रिय महाबली कर्ण ने गुरु द्रोण की आज्ञा से अर्जुन के किये हुए कामों को कर दिखाया।

उस समय सारे दर्शक कर्ण को धन्यवाद देने लगे। तब अपने सब भाइयों के सहित दुर्योधन कर्ण को गले से लगा कर कहने लगे-

हे महाबाहो ! हे मानप्रद ! आप का आना शुभ हो । आप

भाग्य से पधारे हैं। मैं और कुरुओं का राज्य आप ही का है। उसे अच्छी तरह भोगिए।

कर्ण ने कहा—मैं यह सब आप का किया हुआ समझता हूं। आप से मैत्री करता हूं। हे प्रभो! मैं अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध चाहता हूं। जिससे यह पता लग जाय कि दोनों में कौन अधिक बली है।

कर्ण की इस प्रकार दुर्योधन से मित्रता होते देख कर अर्जुन बहुत क्रोधित हुए। उनका मुख लाल हो गया। दुर्योधन को सुना कर वे कर्ण से कहने लगे—

हे रथ हाकनेवाले के पुत्र! जो लोग विना बुलाये आते हैं और विना पूछे व्यर्थ बकते हैं उन्हें जिस लोक को जाना चाहिए आज हमारे हाथों से मारे जा कर तुम उसी लोक का रास्ता लोगे।

कर्ण ने उत्तर दिया—

हे अर्जुन! इस अखाड़े में सब का साझा है। बुलाने अथवा निकाल देने में तेरा क्या अधिकार है। राजाओं में बल प्रधान होता है। व्यर्थ की बहादुरी क्यों दिखाते हो। अगर साहस है तो मुझ से युद्ध लो।

तदनन्तर द्रोण की आज्ञा लेकर भाइयों से उत्साहित हो कर अर्जुन युद्ध के लिए कर्ण के सामने आये। उधर कर्ण दुर्योधन

से उत्साहित हो कर धनुष वाण धारण किये अर्जुन से लड़ने के लिए डट गये।

धृतराष्ट्र के पुत्र जिधर कर्ण थे उस ओर खड़े हुए। द्रोणाचार्य्य, कृप और भीष्म अर्जुन की ओर हुए। सारा अखाड़ा दो पक्षों में बट गया। स्त्रियों के भी दो भाग हो गये।

कुन्ती अपने दोनों प्यारे पुत्रों को महान युद्ध करने के लिए तैयार खड़ा देख कर बहुत दुःखित हुई। वे मारे दुःख के अचेत हो कर गिर पड़ीं।

जब उन दोनों ने अपने अपने धनुष उठाये तब व्यवहार में निपुण कृपाचार्य्य इस होने वाले अनर्थ को रोकने के लिए कर्ण से बोले—

हे कर्ण! यह कुन्ती का पुत्र, पाण्डुनन्दन, पांडुवंशी अर्जुन आप के साथ युद्ध करेगा। हे महाबाहो! आप भी इसी प्रकार अपने माता पिता और कुल को बतलावें। तब योग्य समझ कर अर्जुन आप के साथ युद्ध करेगा। कुल और आचार से हीन वाले के साथ राजपुत्र युद्ध नहीं करते।

कृपाचार्य्य के युक्ति से भरे हुए वचन सुनकर कर्ण को बड़ी लज्जा प्राप्त हुई। कुल और गोत्र का ठीक हाल न जानने से उनका मुख वर्षा से भीगे हुए कमल के समान नीचे झुक गया। परन्तु दुर्योधन इस बात को न सह सके। उन्होंने कहा—

हे आचार्य्य ! क्षत्रिय होने में तीन गुण मुख्य होते हैं, एक अच्छे कुल में जन्मा हो, दूसरे शूरवीर हो, तीसरे सेना का नायक हो। कर्ण शूरवीर हैं। इनके साथ जाति पांति के झगड़े लगाना व्यर्थ है। यदि अर्जुन राजा के सिवाय युद्ध करना नहीं चाहते तो मैं कर्ण को अभी अंग देश का राजा बनाता हूं। यह कह कर दुर्योधन ने उसी समय धर्म शास्त्र के विधान के अनुसार कर्ण का राज्याभिषेक करके अङ्ग देश का राजा बना दिया। महाबली कर्ण अपनी इस प्रकार प्रतिष्ठा पाकर फूला न समाया। उस समय आनन्द में डूबा हुआ वह वीर दुर्योधन से कहने लगा—इस राज्यदान के बदले आप को क्या दूं ? मैं जन्मभर आप से उद्धार नहीं हो सकता।

दुर्योधन ने कहा—हे अङ्गराज ! मैं आप से गाढ़ी मित्रता चाहता हूं यही मेरी इच्छा है।

कर्ण ने कहा—तथास्तु, आप की इस आज्ञा को मैं जन्मभर पालन करूंगा। अधिक क्या कहूं। यह मेरा शरीर आप ही के हित के लिए अर्पण है।

अद्धरथ नामक सारथी ने जब यह सब समाचार सुने तब वे जल्दी से घर से अखाड़े पर दौड़े आये। एक तो बूढ़ा शरीर दूसरे जल्दी जल्दी चलना पड़ा। इससे पसीने से भीग गये और शरीर कांपने लगा। ये ही कर्ण के पालन पोषण करने वाले थे।

अंग देश का राजा होने पर भी कर्ण ने अपने पिता को देख कर धनुष छोड़, सिर झुका, बड़े विनीत भाव से उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी बड़े प्रेम से कर्ण को पुत्र कहकर प्यार किया।

उस समय भीमसेन ने कर्ण को सूतपुत्र जानकर उपहास से भरे इस प्रकार के अनुचित वचन कहे—

हे सूतपुत्र ! हमें विश्वास था कि तू अर्जुन ऐसे महाबली के हाथों से मारा जा कर स्वर्गधाम को जावेगा। परन्तु तू इस योग्य नहीं है। इसलिए युद्ध की लालसा छोड़ कर अपने पिता की भांति जल्दी चाबुक पकड़।

हे नराधम ! जैसे यज्ञ में अग्नि के निकट रक्खी हुई हवन की खीर को कुत्ता खाने का अधिकारी नहीं होता वैसे ही तू भी अंग देश का राज्य भोगने का अधिकारी नहीं है।

अपने मित्र का अपमान दुर्योधन से न सहा गया। वे क्रोध से भरे हुए तुरन्त उठ खड़े हुए और भयानक काम करने वाले भीमसेन से कहने लगे—

हे भीम ! तुम्हें ऐसे वचन कहना योग्य नहीं है। क्षत्रियों में बल ही प्रधान होता है। अतएव क्षत्रिय भाई का काम युद्ध दिखलाना है। यदि मान लिया जाय कि कर्ण नीच वंश में जन्मे हैं तो भी वे अपने गुण कर्म से क्षत्रिय हैं। तुमने सुना होगा कि विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने पर भी अपने कर्म्मों से अचल ब्राह्मणपने को पा गये। फिर कर्ण तो कुण्डल कवच

पहने हुए अपने उत्तम चिन्हों से सूर्य्य के समान चमक रहे हैं। ये नीच कैसे हो सकते हैं? भला कहीं हिरनी बाघ को पैदा कर सकती है? निस्सन्देह ये शूरजातीया स्त्री के पुत्र हैं। जो अङ्गराज अपने बाहुबल से सारे संसार के राजा हो सकते हैं उनके सामने यह अङ्ग देश का छोटा सा राज्य किस गिनती में है। कुछ भी हो अङ्गदेश का राजा होने में कर्ण से जो विद्वेष रखता हो वह निकल आवे। हम उससे युद्ध करने को तैयार हैं।

इस बात को सुनकर अखाड़े में बैठे हुए बहुतों ने हाहाकार शब्द किया। बहुतों ने दुर्योधन को धन्यवाद दिया। इतने में सूर्य्य अस्त हो गया। दुर्योधन कर्ण को साथ लेकर प्रकाश कराते हुए अखाड़े से चले। पाण्डव, द्रोण, कृप और भीष्म अपने अपने घरों को गये। और सब लोग भी कोई अर्जुन, कोई कर्ण और कोई दुर्योधन का जिक्र करते हुए वहां से चले।

गुरुदक्षिणा।

शिष्यों को सब विद्या में निपुण हो गया देख द्रोण के मन में उनसे गुरुदक्षिणा लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। तब सब शिष्यों को बुलाकर उन्होंने कहा—

श्लोक।

पाञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रण मूर्धनि।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात परम दक्षिणा॥

अर्थ—हे शिष्यो ! तुम्हारा भला हो। तुम पाञ्चाल राजा द्रुपद को युद्ध में हरा कर हमारे पास क़ैदी की तरह पकड़ लाओ। इसी को हम गुरुदक्षिणा समझेंगे।

द्रुपद पर चढ़ाई।

राजकुमार 'तथास्तु' कह कर गुरुदक्षिणा देने के लिए जल्दी रथों पर चढ़ कर साथ में गुरुद्रोण को लिये पाञ्चाल देश को गये। दुर्योधन ने अपने भाइयों और कर्ण की सहायता से पहले पाञ्चाल देश पर धावा किया। उनके मन में यह इच्छा थी कि पाण्डवों से पहले हम गुरुदक्षिणा देकर गुरु को प्रसन्न करें।

अर्जुन धृतराष्ट्र के पुत्रों की घमंड से भरी करतूत को देख कर आपस में सलाह करके आचार्य द्रोण से कहने लगे—

हे गुरो ! इनके पराक्रम के अन्त में हम लोग अपना साहस प्रकट करेंगे। पञ्चाल राज द्रुपद को लड़ाई में पकड़ कर लाना इनकी सामर्थ्य के बाहर है। यह कह कर वे पाप रहित अर्जुन अपने भाइयों के सहित आध कोस नगर के बाहर ही ठहर गये।

जब द्रुपद ने देखा कि कौरव अपार सेना से हमारे देश में धावा कर रहे हैं तो वे भी सचेत हुए। और अपनी सेना को ले कर उनके सामने आये। दोनों ओर से घोर युद्ध आरम्भ हुआ। द्रुपद अपार बाणों की वर्षा करते हुए अपने रथ को चारों ओर

दौड़ाने लगे। उनकी भयंकर मार के सामने कौरवों के होश उड़ गये। सारी सेना सर्दी से सताये हुए मनुष्य की भांति कांपने लगी। अर्जुन के साथ संग्राम करने की इच्छा रखने वाले कर्ण भी द्रुपद के बाणों से तृप्त हो गये। उस समय पाञ्चाल देश के योधा अपनी विजय देख कर सिंहनाद करने लगे।

उस समय पाण्डव पाञ्चालों की गर्जना को सहन न कर सके। उन्होंने गुरु द्रोण को प्रणाम किया और रथों पर चढ़ कर झट संग्राम भूमि में पहुंच गये। महावली भीम हाथ में गदा लिये दूसरे यमराज के समान गर्जते हुए द्रुपद की सेना में घुस गये। जैसे मगर समुद्र में किलोलें करता हुआ उसे मथता है उसी प्रकार युद्ध में कुशल पराक्रमी भीम ने भी पाञ्चालों की सेना को व्यथित कर दिया। गदा की चोट से बड़े बड़े मतवाले हाथियों को मार गिराया। रथों को तोड़ डाला। प्यादे और रथियों के सिर फोड़ दिये। जैसे ग्वाला बन में पशुओं को हांकता है उसी प्रकार रथों और हाथियों को हांकते हुए भीम आगे बढ़े।

इधर द्रोणाचार्य्य का हित करने को तैयार अर्जुन ने भी अपने पैने वाण जालों से द्रुपद को पीछे हटा दिया। फिर प्रलय काल की अग्नि के समान जलते हुए वाणों से हाथी, घोड़े और रथों के ढेर को नाश करने लगे। जिन वीरों को अपने बल का बड़ा अभिमान था वे भी अर्जुन के वाण फेंकने की शीघ्रता को देख

कर दंग रह गये। तव द्रुपद के सेनापति सत्यजित अर्जुन के सामने आये। अर्जुन ने आश्चर्य्य में डालने वाले तीखे दश बाणों से उन्हें घायल कर डाला। जो लोग उनकी सहायता कर रहे थे उन्हें भी मार गिराया। अन्त में द्रुपद से जा भिड़े। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। द्रुपद ने बड़ा ज़ोर लगाया लेकिन द्रोण के प्यारे शिष्य के सामने उनकी एक न चली। उन्हों ने द्रुपद का धनुष काट डाला ध्वजा को पृथ्वी पर गिरा दिया। पांच बाणों से घोड़ों और सारथी को वेध दिया। ऐसी दशा में द्रुपद अपने को वहुत देर तक न वचा सके। अर्जुन ने धनुष को रख दिया और तलवार हाथ में ले ली। फिर रथ से उतर पड़े और उछल कर एक पल में द्रुपद के रथ पर जा पहुंचे। वहां उन्हों ने द्रुपद को पकड़ कर क़ैद कर लिया।

उस समय पाञ्चाल देश के योधा दशों दिशाओं की ओर भागने लगे। अर्जुन भी वीरों को अपना भुज वल दिखाते हुए सिंहनाद करके शत्रु दल से निकल आये। फिर मन्त्री सहित राजा द्रुपद को द्रोण के समीप ला कर वोले—

हे गुरो! यह मन चाही हुई अपनी गुरुदक्षिणा लीजिए।

राज्य धन के छिन जाने से द्रुपद का मन बहुत दुःखी हुआ। वे द्रोणाचार्य्य को सामने देख कर और भी अधिक लज्जित और दुःखी हुए। उन्हें साथ पढ़ने के समय की प्रतिज्ञा और आचार्य्य

के अपमान की बातें अब याद आ गईं।

तब आचार्य्य ने कहा—हे द्रुपद ! तुम्हारे देश और क़िलों को हमारे शिष्यों ने बर्बाद किया है। अब जीते जी शत्रु के वश में आकर क्या पुरानी मित्रता चाहते हो ?

हे वीर ! प्राण भय से मत डरो। हम क्षमा करने वाले ब्राह्मण हैं। बाल्य अवस्था में जो आप आश्रम में मेरे साथ खेले हैं। उससे स्नेह और प्रीति आप के साथ बढ़ी हुई है। इसी प्रीति के कारण ग़रीबी की दशा में हमने आप से याचना भी की थी। परन्तु आप ने हमारा अपमान किया और कहा कि कंगाल कहीं राजा का मित्र हो सकता है। अब हम पिछली बातों को भूले से जाते हैं और आप के साथ मैत्री चाहते हैं। हम आप का सारा राज्य नहीं लेंगे जिससे आप मेरी तरह भिखारी हो जांय। आप गंगा के दक्षिण तट—अर्थात् आधे राज्य के राजा बने रहें। हम उत्तर तट के राजा होंगे। जिससे हमारा तुम्हारा भेद भाव दूर हो जाय। अब ऐसी दशा में यदि आप ठीक समझते हों तो मुझे अपना सखा समझें।

राजा द्रुपद तो द्रोण के आधीन थे ही, सिर नीचे किये हुए बोले—

हे ब्रह्मन् ! शक्ति रखने वाले महात्माओं के लिए कोई कार्य कठिन नहीं है। हम आप से प्रीति करते हैं। आप भी हमारे ऊपर

सदा प्रीति बनाये रक्खें।

ऐसा कहने पर द्रोण ने उन्हें स्वतन्त्र किया और प्रसन्न हो कर सत्कार करके आधा राज्य दिया।

राजा द्रुपद द्रोण के यहां से आ कर काम्पिल्य नामक नगर में रहने लगे। परन्तु आधा राज्य चले जाने और इस प्रकार पराधीन होने से उनका मन बहुत दुःखी रहता था। इसलिए उन्होंने द्रोण के बध करने की इच्छा अपने मन में पूरे तौर से ठान ली। वे अपने इस मनोर्थ के पूरा करने के लिए जंगलों में अनेक ऋषि, मुनियों के पास गये। पर किसी ने द्रोण बध की युक्ति न बताई। अन्त में महर्षि याज और उपयाज ने उनसे कहा कि अगर तुम पुत्रेष्टि यज्ञ करो तो तुम्हारा मनोर्थ पूर्ण होगा—द्रुपद ने उनकी सहायता से वैसा ही किया।

उस यज्ञ के प्रभाव से उन्हें धृष्टद्युम्न नामक महाबली एक पुत्र और कृष्णा नाम की एक महा रूपवती कन्या प्राप्त हुई। इसी पुत्र ने आगे चलकर द्रोण का वध किया। इसी यज्ञ से भीष्म बध के लिए शिखण्डी का भी जन्म हुआ।

द्रोणाचार्य्य भी शिष्यों से विदा हो कर अहिच्छत्रा पुरी को पधारे। यह पुरी अर्जुन ने द्रुपद से जीत कर उन्हें दी थी। इस लिए चलते समय उन्होंने अपने प्यारे शिष्य अर्जुन को अनेक प्रकार के अमोघ अस्त्र दिये और वहीं सुख से रहने लगे।

युधिष्ठिर का युवराज पद।

श्लोक।

ततः सम्वत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव।
स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डु पुत्रो युधिष्ठिरः॥

एक वर्ष बीतने पर धृतराष्ट्र ने पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को उन की बीरता, स्थिरता, सहनशीलता, सरलता, और सत्यता आदि गुणों से युवराज पद प्रदान किया। महापराक्रमी चारों भाई उन के वश में रहने लगे। अर्जुन ने शस्त्र विद्या की कुशलता से चारों ओर के राजाओं को जीत कर अपना राज्य बढ़ाया। प्रजा भी धर्म्मराज के गुणों पर मोहित हो कर उनकी बड़ाई करने लगी। वह हृदय से यही चाहती थी कि युधिष्ठिर किसी प्रकार राजा हों।

दुर्योधन के विचार और अत्याचार।

दुर्मति दुर्योधन भीमसेन को बल में अधिक और अर्जुन को अस्त्र विद्या में कुशल जान कर जलने लगे। उनका मन सोलह आने पाण्डवों से फिरंट हो गया। वे ईर्ष्या से क्रुद्ध कर धृतराष्ट्र के समीप जाकर कहने लगे—

हे तात! मैंने बातें करते हुए पुरवासियों की अशुभ बातें सुनी हैं। वे युधिष्ठिर को अपना स्वामी बनाना चाहते हैं। यही

नहीं किन्तु मुझ को बड़ी पीड़ा पहुंचाने को तैयार हुए हैं । ऐसी दशा में यदि लोकमत मेरे प्रतिकूल इस प्रकार उत्तेजित हो गया तो मेरा और मेरे भाइयों का कल्याण नहीं है । इसलिए कोई ऐसी नीति से काम लीजिए जिससे हम दूसरों के टुकड़ों से पलते हुए सदा नरक में न पड़े रहें ।

धृतराष्ट्र भी पाण्डवों के पराक्रम और गुणों को देख कर डरे हुए थे । वे समझे हुए थे कि पाण्डवों के तेज के आगे हमारे पुत्रों की कुशल नहीं है । इस कारण उन्होंने उनका बल बता कर दुर्योधन को डराया । लेकिन दुर्योधन कब माननेवाले थे । उन्हों ने कहा—

श्लोक ।

मध्यस्थः सततं भीष्मो, द्रोणपुत्रो मयिस्थितः ।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो, भविता नात्र संशयः ॥

हे तात ! भीष्म सदा मध्यस्थ हैं अर्थात् दोनों का भला चाहते हैं । अश्वत्थामा मेरे पक्ष में हैं । इसलिए यह निस्सन्देह है कि द्रोण उधर होंगे जिधर पुत्र होगा । कृपाचार्य्य भी इन दोनों को नहीं छोड़ सकते । कर्ण मेरा प्राणप्रिय मित्र अर्जुन को जीत सकता है । मैं भीम से गदायुद्ध में कम नहीं ।

इस प्रकार अपने पिता धृतराष्ट्र को निडर कर दुर्योधन उन की सहायता से पांडवों के प्राण लेने के लिए उतारू हो गये । उन्हें वारणावर्त नगर में भेज लाख के घर में रख कर आग लगवा

दी। लेकिन वे बाल बाल बच गये और जंगलों में घूमते फिरते दूसरों का उपकार करते, दुःख सहते पाञ्चाल देश पहुंचे। वहां द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के साथ उनका व्याह हो गया।

धृतराष्ट्र, दुर्योधन और कर्ण की मन्त्रणा।

जब दुर्योधन ने देखा कि पाण्डव राजा द्रुपद और उनके पुत्र महाबली धृष्टद्युम्न और शिखंडी के सम्बन्धी हो गये हैं तब उनके पेट में खिचड़ी पकने लगी। वे कर्ण के साथ अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जा कर बोले—

हे तात! अब हमें समय के अनुसार काम करने का विचार करना चाहिए। नहीं तो पाण्डव हमारा नाश करने में कमी न करेंगे। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने चतुर गुप्तचर वहां भेजूं जो आपस में पाण्डवों में द्वेष पैदा कर दें। अथवा द्रुपद ही को उनसे नाखुश करा दें। अगर यह भी न हो तो वे षडयन्त्र रचकर भीम ही को मार डालें। जिससे अर्जुन की शक्ति कम हो जाय।

कर्ण ने दुर्योधन की सम्मति को न माना। उन्होंने कहा— हे दुर्योधन! पाण्डव उपाय से आधीन नहीं हो सकते। पहले ही आपने सूक्ष्म उपायों से उनको दबाने के लिए परिश्रम किया पर आप उनको दाब नहीं सके। जब वे यहां आप के पास थे वे बिना पंख के छोटे बच्चे थे तब तुम उनको मार नहीं सके अब तो वे बड़े हो गये उनके पंख निकल आये और विदेश में द्रुपद

के साथ हैं। इसलिए उपाय से वश में नहीं आ सकते। यह मेरा निश्चय है। वे पांचों भाई प्रेम की रस्सी से आपस में बंधे हुए हैं। द्रुपद भी उनके लिए प्राण दे देंगे। इसलिए ऐसी दशा में हमें यह करना चाहिए कि जब तक पाण्डव जड़ नहीं पकड़ते उसके पहले ही उन पर चढ़ाई कर दो। जब तक कृष्ण और द्रुपद उनकी सहायता का उद्योग करें उसके पहले ही उन्हें पकड़ कर मार डालो। उनको वीरता से जीत कर पृथ्वी के सुख भोगो। और उपायों से वे वश में नहीं आ सकते।

धृतराष्ट्र को कर्ण की बातें पसन्द आईं और उन्होंने कहा—

हे कर्ण! जैसे तुम वीर हो वैसे ही सच्चे वीर वचन कहतेहो। पर इस विषय में भीष्म, द्रोण और विदुर से भी सम्मति ले लेना उचित है। तदनन्तर तीनों महात्मा बुलाये गये और उनसे पूछा गया।

भीष्म, द्रोण और विदुर की सम्मति।

भीष्म ने कहा—

हे धृतराष्ट्र! पाण्डवों के साथ लड़ाई करना मुझे किसी प्रकार भी अच्छा नहीं लगता। मुझे जैसे आप हो वैसे ही पाण्डु भी हैं। मुझे जैसे गान्धारी के पुत्र हैं वैसे ही कुन्ती के भी हैं। मैं जैसे उनकी रक्षा करता हूं वैसे ही तुम्हें भी करनी चाहिए।

हे राजन्! जैसे वे मेरे हैं वैसे ही वे दुर्योधन के भी हैं और सब कुरुवंशियों के भी हैं। ऐसी अवस्था में मुझे उनसे लड़ाई

करना अभीष्ट नहीं है। मैं तो चाहता हूं कि उन वीरों के साथ मेल करके उनको आधा राज्य दे देना चाहिए। क्योंकि उन पाण्डवों के पिता का भी तो यह राज्य है। यदि यह कहा जाय कि वे राज्य के अधिकारी नहीं हैं तो मैं पूछता हूं कि दुर्योधन ही राज्य के अधिकारी कैसे हो सकते हैं और कोई कुरुवंशी कैसे हो सकता है?

हे नरेश! कुरुकुल के योग्य कामों को करो। अपने बड़ों के समान धर्म्म का अनुष्ठान करो। कीर्ति की रक्षा करो। कीर्ति परम बल है। जिस पुरुष की कीर्ति नाश हो गई उसका जीना व्यर्थ है। पाण्डवों को लाख के घर में जलाने की निन्दा आप ही की उड़ रही है। इसलिए उन्हें आधा राज्य देकर इस निन्दा को दूर कर दो और होनेवाली कलह को सदा के लिए मिटा दो यही मेरी सम्मति है।

यह सुन कर द्रोणाचार्य्य ने कहा—हे राजन्! जो भीष्म की सम्मति है वही मेरी भी है। मैं भी कहता हूं कि पाण्डवों को आधा राज्य देकर होने वाली लड़ाई की जड़ काट डालो। वे भी तुम्हारे पुत्र हैं। इसलिए पाण्डवों की भेंट के लिए किसी प्रियभाषी मनुष्य को बहुत से अमूल्य रत्न देकर राजा द्रुपद के यहां भेजिए। वह इस सम्बन्ध की उनको बड़ी बधाई दे और यह कहे कि राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन इससे बड़े प्रसन्न हुए हैं। हम सबों को भी यह सम्बन्ध अच्छा लगना बतला कर पाण्डवों को

वार वार तसल्ली दे। फिर पाण्डवों को आप के यहां आने के लिए कहे। जब पाण्डव यहां आवें तब उनके शुभागमन के लिए दुःशासन और कर्ण के आधीन सजी हुई सेना जावे। जिससे आप के पुत्रों और पाण्डवों के वीच द्वेष भाव न रहे। यही हम और भीष्म उचित समझते हैं।

भीष्म और द्रोणाचार्य्य की वातों का समर्थन करते हुए विदुरजी बोले—

हे राजन्! पाण्डव इतने वली हैं कि वे आप देवताओं को भी जीत सकते हैं। इसके सिवा वली यादवों के साथ श्री कृष्ण और बलदेव उनके पक्ष में हैं। विवाह हो जाने से पाञ्चाल के साथ राजा द्रुपद उनके सम्बन्धी ही हैं। इससे पाण्डवों का वल देख कर अपना मान रखने के लिए उन्हें बुला लीजिए। फिर यहां आने पर आधा राज्य देकर अपना कलंक धो डालिए। इसी में कल्याण है।

धृतराष्ट्र ने इन तीनों महात्माओं की वात मान ली। उन्होंने विदुर को आचार्य के कहने के अनुसार पाण्डवों के यहां भेजा। पाण्डव श्रीकृष्ण की सम्मति से विदुर के साथ हस्तिनापुर आये। धृतराष्ट्र ने इन्द्रप्रस्थ का आधा राज्य देकर पाण्डवों को सन्तुष्ट किया। पाण्डवों ने अपने चचा से आधा राज्य पाकर उसे अपने बाहुवल से वढ़ाया। मय दानव से राजसभा वनवाई। अर्जुन

अग्निदेव से गाण्डीव धनुष और बाणों से न खाली होने वाला तरकस पाकर खाण्डव वन जलाया। युधिष्ठिर ने चारों भाइयों की सहायता से चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञ के पूरा होने में द्रोणाचार्य्य ने भी भीष्म के साथ सब कामों की देख भाल रखने में अपने प्यारे शिष्य युधिष्ठिर को बड़ी सहायता दी।

पाण्डवों का राज्य हरण।

दुर्योधन सागर पर्यन्त इस पृथ्वी को पूरे तौर से युधिष्ठिर के वश में देख और इन्द्रयज्ञ के समान इस महायज्ञ को अवलोकन कर क्रोध से जल उठे। उन्होंने अपने मामा शकुनी से अपने हृदय की वेदना कही। शकुनी ने जुए के द्वारा पाण्डवों का सब कुछ जीत लेने की सलाह देकर उन्हें धीरज बँधाया। यह बात दुर्योधन को अच्छी लगी वे अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जा कर बोले—

हे तात! हम अपने शत्रु पाण्डवों का ऐश्वर्य्य देख कर बहुत दुखी हैं। इस दुख के दूर करने का उपाय यही है कि आप पाण्डवों को बुलाकर हमारे मामा शकुनी के साथ जुआँ खेलने की आज्ञा दें। यदि आप ऐसा न करेंगे तो हम अपने प्राण दे देंगे।

धृतराष्ट्र ने पुत्र-प्रेम से यह बात दुर्योधन की मान ली। उन्हों ने चतुर कारीगरों से जुआँ खेलने की एक बड़ी उत्तम सभा

बनवाई। फिर विदुर को बुलाकर शकुनी को पाण्डवों के साथ जुआँ खेलने की बात कही।

विदुर इस बात को सुन कर घबड़ा गये और बोले— महाराज! हम आपकी इस बात को अच्छा नहीं समझते। इससे युद्ध की वह आग भड़केगी जिसमें कौरव वंश जल जायगा। इससे आप इस अनर्थकारी घटना को रोकिए।

धृतराष्ट्र ने विदुर के समझाने पर ध्यान न दिया। उन्हों ने पाण्डवों को लाने के लिए ज़ोर दिया। बेचारे विदुर उदास हो कर पाण्डवों के पास खाण्डवप्रस्थ गये। पाण्डव नीतिमान विदुर के साथ हस्तिनापुर आये।

दूसरे दिन सवेरे धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डव जुआँ खेलने की सभा में गये। द्रोणाचार्य, भीष्म आदि और राजा लोग वहां जाकर अपने अपने आसनों पर बैठे। अपने भाइयों, कर्ण और शकुनी को लेकर दुर्योधन भी वहीं पहुंचे। शकुनी और युधिष्ठिर दोनों ने पांसे फेंके। उसमें युधिष्ठिर अपना सब कुछ हार गये। यहां तक कि उन्होंने अपनी प्रियतमा स्त्री द्रौपदी को भी दांव पर रख दिया। यह देख द्रोण आदि महात्माओं के माथे से पसीना निकल पड़ा। द्रौपदी को भी शकुनी ने जीत लिया। अब दुर्योधन की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने एक वस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को दुःशासन से सभा में पकड़वा मंगाया। उस समय द्रौपदी की दुःख भरी पुकार वज्र का भी हृदय पिघला रही थी।

महात्मा द्रोणाचार्य्य भी सभा में बैठे युधिष्ठिर का सर्वनाश और द्रौपदी की दुःख भरी आहों से दुखी हो रहे थे। लेकिन उनमें यह शक्ति नहीं थी कि वे कुछ बोल सकें। किसी कवि ने ठीक कहा है—सर्वं परवशं दुःखं। अर्थात् पराधीनता महा दुःख है। जहां द्रोणाचार्य्य स्वतन्त्र रह कर बड़े बड़े राजाओं को अपने उपदेश से उनको नीच कर्मों से हटा सकते थे, वहां वे दुर्योधन की यह अनर्थकारी करतूत देखते हुए चुपचाप बैठे रहे।

अहह ! पराधीनता तेरी महिमा महान् है। तू बड़े बड़े तेज-धारियों को भी नीच बना सकती है। जिस देश के वीर महात्मा पराधीनता के दास बन जावें, अत्याचारों को चुपके सहन कर लें, उस देश की बर्बादी ही समझना चाहिए।

इस देशनाशक जुएं के कारण पाण्डव बारह वर्ष के लिए बन को गये। उनसे एक वर्ष तक छिपे रहने की भी शर्त कराई गई। यदि कौरव उन्हें देख लें तो फिर १२ वर्ष बन में रहें। इस अन्धेर का भी कुछ ठिकाना है!!

पाण्डवों का वनवास।

पाण्डव बन को चले गये। वहां उन्हें बहुत से विघ्नों का सामना करना पड़ा। ज्यों ज्यों उन पर कष्ट पड़ते थे त्यों त्यों वे कौरवों के नाश के लिए उत्तेजित होते थे। यहां तक कि अर्जुन कष्टों की परवाह न करके इन्द्रलोक को गये। वहां इन्द्र की आज्ञानुसार

उन्होंने महादेवजी की घोर तपस्या की। उनसे पाशुपति अस्त्र लिया। उसका चलाना सीखा। फिर इन्द्र ने भी उन्हें सब देव-अस्त्र देकर उनके चलाने का विधान बताया।

अब अर्जुन को विश्वास हो गया कि हम दुर्योधन का पक्ष लेनेवाले भीष्म और द्रोण ऐसे महारथियों को लड़ाई में अवश्य हरा सकेंगे। यह विश्वास उन्हें क्यों न हो। अन्यायी के अत्याचारों से बचने के लिए-उसको कुचलने के लिए मुख्यकर तीन बलों की आवश्यकता होती है—शारीरिक बल, मस्तिष्क (दिमाग़ी) बल और हथियारों का बल—दो बल उनमें पहले ही थे, तीसरे बल में जो कमी थी वह भी अच्छी तरह पूरी हो गई।

इस प्रकार बली अर्जुन सब से अधिक सबल होकर गन्धमादन पर्वत पर अपने चारों भाइयों से मिले। युधिष्ठिर ने उनसे सब हाल पूंछा। अर्जुन ने सब बीती हुई कथा सुनाते हुए एक से एक बढ़िया हथियार खोल कर दिखाये। उन्हें देख कर द्रौपदी सहित चारों भाइयों के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने दुर्योधन को मरा ही समझा।

पाण्डवों का अज्ञातवास।

पांचों पाण्डवों और द्रौपदी ने एक वर्ष तक अज्ञातवासके लिए राजा विराट के यहां रहना अच्छा समझा। वे सब अपना अपना नाम और भेष बदल कर इच्छानुसार जुदे जुदे कामों पर वहां

मुक़र्रर हो गये । राजा इन एक से एक वढ़िया काम करने वालों को पा कर वहुत प्रसन्न हुए। भीमसेन ने वहां सवसे भारी पहलवान जीमूत को हराया। सैरन्ध्री द्रौपदी को सताने वाले सुदेष्णा रानी के भाई कीचक को वध किया और नाम गन्धर्वों का लगा। जिससे राजा विराट भी डर गये।

पाण्डवों के अज्ञातवास की समाप्ति और दुर्योधन की चिन्ता।

जव पाण्डव अज्ञातवास करने के लिए विराट नगरी गये तव दुर्योधन ने उनका पता लगाने के लिए चारों ओर दूत भेजे। वहुत कुछ ढूढ़ने पर भी दूत उनका पता न लगा सके। अन्त में हैरान होकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य्य आदि के सामने वे दुर्योधन से आकर बोले—

महाराज ! हमने सभी जगहों में पाण्डवों को ढूंढ़ा। पहाड़, जंगल, नदी, देश, अन्य-देश हम से कुछ नहीं बचा। मालूम होता है कि पाण्डव इस संसार में नहीं हैं। अब आप बेखटके सुख से राज कीजिए। राजन् ! एक वात पाण्डवों को ढूढ़ते समय मालूम हुई है वह भी सुन लीजिए। मत्स्यराज विराट की रक्षा करने वाले कीचक को रात के समय गन्धर्वों ने मार डाला है उनके भाई बन्दों को भी उन्होंने जीता नहीं छोड़ा।

दूतों के ऐसा कहने पर कौरवों ने कहा—मालूम होता है कि

पाण्डव इस संसार में नहीं हैं। लेकिन तौ भी पाण्डवों के ढूढ़ने में कमी न करना चाहिए। सम्भव है दुर्दशा में पड़ हुए कहीं छिपे बैठे हों।

यह सुनकर द्रोणाचार्य्य ने कहा—हे दुर्योधन! तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं। देखो—

कवित्त।

पाण्डव हैं पण्डित-महान अस्त्र शस्त्रन में,
नीति के निधान शूरवीर सिरताज हैं।
मानत परोपकार करैं अपकार नाहिं,
देखत हैं वैरिन के भीतरी दराज हैं॥
इन्द्रिन को जीति धर्म्म माहिं बर बुद्धि राखि,
राग भरे आपस में सेवैं धर्म्मराज हैं।
कैसे नाहिं रहै रमा जीति को दिवाइ तिन्हैं,
जवै रखवारे चक्रधारे यदुराज हैं॥

सवैया।

काल गती जो उदय बल से सब देखि रहे वे सजे रण साज।
वीर वली करि युक्ति भली डरि हैं कुरुवंशिन पै गुरु गाज।
जानि परै ना वचाव हमैं, अब होनहिं चाहत राज अकाज।
उतपात भरी कह वातन में, तुम्हैं जानि परै सो करौ कुरुराज॥

भीष्म और कृपाचार्य्य ने भी द्रोणाचार्य्य के समान दुर्योधन

को बहुत कुछ समझाया। लेकिन उन्होंने इन महात्माओं के बचनों पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

महाराजा विराट ने कीचक की सहायता से त्रिगर्त देश के राजा सुशर्म्मा को लड़ाई में कई बार हराया था। त्रिगर्तराज ने इस समय अच्छा मौक़ा जान दुर्योधन से कहा—

हे कौरवेन्द्र! बलवान कीचक के मारे जाने से इस समय राजा विराट अपंग हो रहे हैं, उनका सारा घमंड धूल में मिल गया है। इसलिए ऐसे अवसर पर यदि हम लोग मिलकर विराट पर चढ़ाई करें तो अवश्य हमारी जीत होगी और इससे दो लाभ होंगे। एक तो बहुत सी गायें और रत्नों के ढेर हाथ लगेंगे, दूसरे आप के राज्य की बढ़ती होगी।

इस बात को सुन कर कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र! त्रिगर्तराज ने अवसर की बात कही है। इसलिए आप भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य्य से सलाह लेकर शीघ्र ही राजा विराट पर चढ़ाई कीजिए, और अपना राज्य बढ़ाइए। निर्बल पाण्डवों के ढूढ़ने में समय खोने के सिवा कुछ लाभ नहीं हो सकता।

दुर्योधन ने कर्ण की बात मान ली। वे भीष्म और द्रोणाचार्य्य आदि से सलाह लेकर विराटराज पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे।

कौरवों की चढ़ाई के एक दिन पहले ही सुशर्म्मा ने अपनी

विशाल सेना लेकर विराटपुरी के दक्षिण भाग पर चढ़ाई करके बहुत सी गौवें हरण कर लीं।

ग्वालों ने जल्दी से जाकर राजा विराट से सारा हाल कहा। विराटराज ने अपनी सैन्य सज कर सुशर्म्मा का मुक़ाविला किया। विराट की सेना के साथ युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव भी थे। दोनों ओर घमासान लड़ाई शुरू हुई। सुशर्म्मा ने विराटराज को क़ैद कर लिया। यह देख युधिष्ठिर से न रहा गया। उन्होंने भीमसेन को आज्ञा दी—

भाई! जिस विराटराज के यहां साल भर सुख से रहे हैं उन्हें सुशर्म्मा ने क़ैद कर लिया है। जाओ राजा विराट को क़ैद से छुड़ा कर सुशर्म्मा को पकड़ लाओ। उपकारी के ऋण से उऋण होना ही हमारा तुम्हारा कर्तव्य है।

भाई की आज्ञा पाते ही भीमसेन उठे। नकुल और सहदेव को साथ में लेकर सुशर्म्मा को मारते मारते व्याकुल कर दिया। फिर विराट को छुड़ाकर सुशर्म्मा को पकड़ लाये। युधिष्ठिर के कहने से सुशर्म्मा का छुटकारा हुआ। राजा विराट अपने इन उपकारियों पर बड़े प्रसन्न हुए।

उधर राजा विराट अपने नगर में लौटने भी न पाये थे कि दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कृप और कर्ण ने कौरवी सेना लेकर विराटपुरी घेर ली और ग्वालों को मार पीट कर साठ हज़ार गौवें अपने अधिकार में कर लीं।

गौवें चरानेवाले ग्वालों ने विराट के पुत्र उत्तरकुमार से आकर सारा हाल कहा। उत्तरकुमार वृहन्नल अर्जुन को अपना सारथी बनाकर संग्राम भूमि की ओर चले। वहां कौरवों की विशाल सेना दूर ही से देख कर वे सहम गये। विना युद्ध किये ही रथ से उतर कर भागने लगे। अर्जुन ने झपट कर उन्हें पकड़ लिया और रथ पर बिठा कर धीरज बँधाते हुए बोले—

हे कुमार! यदि तुम्हें कौरवों के साथ युद्ध करने में भय लगता है तो सारथी बन कर रथ चलाओ। डरने की कोई बात नहीं। हम अपने बाहुबल से तुम्हारी रक्षा करेंगे।

यह सुन कर उत्तर को धीरज हुआ। वे रथ चलाने को तैयार हुए। वेश बदले हुए अर्जुन को रथ पर सवार होते देख कर भीष्म, द्रोण आदि योधा उन्हें पहचान गये। इधर कौरवी सेना में तरह तरह के अशकुन भी होने लगे। तब भीष्म से द्रोण कहने लगे—

मालूम होता है कि आज अर्जुन के सामने हम लोगों को हार माननी पड़ेगी। वे इन्द्रलोक से दिव्य अस्त्र चलाना सीख आये हैं। हम लोगों में कोई भी ऐसा नहीं है जो उनका मुक़ाबिला कर सके। यह सुन कर दुर्योधन और कर्ण आचार्य्य से कुछ नाखुश हुए और अपनी अपनी शेख़ी बघारने लगे।

इधर अर्जुन उत्तरकुमार को साथ लेकर स्मशान भूमि में

शमी बृक्ष के पास गये, जहां उनके अस्त्र शस्त्र रक्खे थे। उत्तर कुमार ने बृक्ष से अर्जुन के बताने के अनुसार पांडवों के हथियार उतारे। उनकी चमक दमक देखकर वे भौचक्के से रह गये। तब अर्जुन ने अपना नाम बताया और भाइयों का पूरा पूरा पता दिया। इस हाल को सुनकर उत्तर चौंक पड़े। उन्होंने विनय पूर्वक अर्जुन को प्रणाम करके कहा—

हे महाबाहो! अज्ञानता वश हमसे जो कुछ अपराध हुए हों उन्हें क्षमा करिए। हम आपके सारथी बनने के लिए तैयार हैं। कहिए किधर चलने की आज्ञा है?

अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार! हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। तुम बेखटके शत्रुओं के बीच में रथ ले चलो। हम अपने दिव्य अस्त्रों से शत्रुओं को मार भगावेंगे।

यह कहकर अर्जुन ने अपना अभेद्य कवच पहना। फिर रथ पर सब हथियार रख कर गांडीव धनुष की भयंकर टंकार और शङ्खध्वनि करते हुए वे कौरवों की ओर चले।

यह देख द्रोणाचार्य्य कहने लगे—

हे कौरव गण! महा धनुर्धारी अर्जुन आ रहे हैं। देखो इनके रथकी चाल से पृथ्वी कांप रही है। देवदत्त शङ्ख की ध्वनि को सुनकर वीरों के मुख मलीन हो रहे हैं। इससे गायों को यहां

से हटा कर मोरचाबन्दी करके होशियार हो जाओ। नहीं तो बचना कठिन है।

यह सुनकर दुर्योधन बोले—

आचार्य्य अपने शिष्य अर्जुन का अधिक प्यार करते हैं। इस से उनके बल को अधिक बढ़ा कर कहते हैं। किंतु हम सब को ललकार कर सुनाये देते हैं कि जो वीर आचार्य्यजी के डरवाने से लड़ाई का मैदान छोड़ कर भागेगा वह हमारे हाथों मारा जायगा।

हे वीरो! अर्जुन के आने में भी सन्देह है क्योंकि तेरह वर्ष पूरे होने में अभी कुछ दिन बाक़ी हैं। ऐसा लोग बताते हैं। पितामह भीष्म हिसाब लगाकर इस बात को बता सकते हैं। लेकिन कुछ भी हो और कोई क्यों न हो हमें तो लड़ाई के मैदान में अपना धर्म्म पालन करना ही पड़ेगा।

कर्ण ने अपने मित्र दुर्योधन की बात को समर्थन करते हुए अर्जुन की निन्दा की। इससे अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य ने कर्ण को बहुत फटकारा। उस समय आपस ही में घरेलू झगड़ा होने लगा। जहां इस प्रकार आपस में फूट फैले वहां जीत कैसी।

यह देख भीष्म ने कहा—

हे वीरो! यह आपस में लड़ने का समय नहीं है। आचार्य्य जी ने आप लोगों को उत्तेजना देने के लिए अर्जुन की बड़ाई की है। इससे सावधान होकर युद्ध के विषय में काम करना चाहिए।

यह दुर्योधन की नासमझी है जो आचार्य्यजी पर दोष लगाते हैं।

तब अश्वत्थामा ने कहा—हमारी भी इच्छा आपस में फूट फैलाने की नहीं है। पिता ने तो एक उदार योधा की भांति शत्रु के गुणों का केवल वर्णन किया है—पक्षपात से उन्होंने कोई बात नहीं कही।

दुर्योधन ने भी द्रोण से कहा—हे गुरो! मुझे भी अपना शिष्य समझ कर क्षमा कीजिए। आप की प्रसन्नता ही से मेरा कल्याण है।

द्रोण ने उत्तर दिया—महात्मा भीष्म के कहने ही से हम प्रसन्न हो गये हैं। फिर वे भीष्म से बोले—हे भीष्म! दुर्योधन की रक्षा करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि बिना तेरह वर्ष पूरे हुए अर्जुन लड़ाई के मैदान में आ जावे। इससे आप हिसाब लगा कर इस बात का पहले निश्चय कर लें।

भीष्म ने कहा—हे आचार्य्य! साधारण हिसाब से चाहे तेरह वर्ष पूरे होने में भले ही कुछ दिन बाक़ी हों लेकिन ज्योतिष के मत से तेरह वर्ष से पांच महीने ६ दिन अधिक हो गये हैं। इसी कारण अर्जुन बेखटके लड़ने के लिए आ रहे हैं। इससे सावधान होकर धर्म्म के अनुसार युद्ध करना चाहिए। रही दुर्योधन की रक्षा की बात सो इसमें हमारा कहना यह है कि सारी सेना चार

भागों में बांट दी जाय। एक भाग की रक्षा में दुर्योधन शीघ्र ही अपने नगर को लौट जावें, दूसरा भाग गायें लेकर जावे। शेष दो भागों से हम लोग अर्जुन का मुक़ाबिला करें।

इस बात को सब लोगों ने पसन्द किया। उसी के अनुसार कार्य्यवाही भी हो गई। फिर वे मोरचाबन्दी करने के लिए बोले—

हे आचार्य्य! आप सेना के बीच में रहें। अश्वत्थामा बांई ओर। कृपाचार्य्य दाहिनी ओर। कर्ण आगे बढ़ें। हम पीछे मदद करने के लिए रहेंगे।

इस प्रकार मोरचाबन्दी करके कर्ण आदि वीर अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करने लगे—उस समय द्रोणाचार्य्य ने कहा—हे हमारी सेना के वीरो! सावधान होकर युद्ध करना। देखो—

सवैया।

[१]

फहराति ध्वजा कपि केरी लखो, सुनो कै रह्यो शब्द कपी बरबीर।
धनु गांडिव को गुन कर्षन में, धुनि छाय रही चहुँ ओर गँभीर॥
दुइ तीर परे इन पैरन पै, दुइ धाय कढ़े मम श्रवनन तीर।
यह पारथ को रथ आवत है, अब होहु सचेत सबै धरि धीर॥

[२]

नहीं रचिओ यहां लाख अगार, न भीम को दै विष बोरब नीर।
नहीं तुम्हरी यहां द्यूत सभा, नहिं है कछु खैंचब द्रौपदि चीर॥
नहीं तुम्हरी यहां द्यूत सभा, नहिं है कछु खैंचब द्रौपदि चीर॥

लगिहै यहां बाणन केरि झरी, धरिहैं विरले कोइ धीरज धीर।
अब आवत है यह पारथ को रथ, होहु सचेत सबै भट वीर॥

[३]

पुत्र समान सिखायो जिसे, बहु भांतिन सों सब अस्त्र प्रयोग।
दण्ड समान प्रचण्ड भुजा बल, जौन सुरेशहिं जीतन योग॥
तेरह वर्ष व्यतीत भये सोइ, शिष्य को ईश कियो है संयोग।
आवत प्राणहु ते प्रिय पारथ, होइ सचेत लखो भट लोग॥

बात की बात में अर्जुन का भी रथ कौरवी सेना के सामने आ गया। उस समय अर्जुन ने सेना को देख कर अपने सारथी से कहा—

हे उत्तर! जिस पापी दुर्योधन के कारण हमें इतने दुःख उठाना पड़े हैं उसी को हम मारना चाहते हैं। इन वीरों से लड़ने में कोई लाभ नहीं। देखो वह दुरात्मा हमारे भय से हस्तिनापुर की ओर भगा जा रहा है। इससे उसी ओर जल्दी रथ ले चलो।

उत्तरकुमार ने उसी ओर घोड़ों की रास खींच कर रथ हांका। कौरवों के वीर अर्जुन के मतलब को ताड़ गये। कर्ण ने अर्जुन के इस मनोर्थ के पूरा होने में बाधा डाली।

कर्ण को देखते ही अर्जुन ने उत्तर से कह कर अपना रथ

कर्ण के सामने कराया। दोनों ओर से घमासान लड़ाई छिड़ गई। अर्जुन ने पैने बाणों से कर्ण को घायल कर मूर्छित कर दिया। वे लड़ाई का मैदान छोड़ कर भागे। मित्र का हारना देख कर दुर्योधन भी लौट आये और अपनी सेना को अर्जुन का रथ घेरने के लिए आज्ञा दी। कृपाचार्य्य अनर्थ विचार कर आप अर्जुन के सामने हुए। अर्जुन ने कृपाचार्य्य की भी वही दशा की जो कर्ण की की थी।

गुरु शिष्य संग्राम।

इस प्रकार प्रसिद्ध वीरों को जीत कर अर्जुन ने उत्तर से कहा—हे वीर! जिस रथ पर सोने के रंगवाली पताका फहरा रही है, जिसमें मूँगे के रंगवाले घोड़े जुते हुए हैं, जिस पर इन्द्र के समान बलवान और बृहस्पति के समान बुद्धिमान, सब अस्त्र शस्त्रों के जानने वाले महात्मा द्रोणाचार्य्य जी बैठे हुए हैं वहां मेरे रथ को ले चलो।

उत्तरकुमार आज्ञा पाते ही घोड़ों को दोड़ाते हुए रथ को आचार्य्य के सामने ले चले। आचार्य्य जी भी अर्जुन को आता हुआ देख कर धावे के साथ रथ बढ़वा कर उनके सामने चले। उस समय समान बल वाले गुरु शिष्य का संग्राम सब योधा अचम्भे के साथ देखने लगे। सेना में बड़े ज़ोरों की शंखध्वनि होने लगी। गुरु को देख कर अर्जुन ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें

प्रणाम किया और विनीत भाव से कहने लगे—

सवैया।

जौन किये दुरयोधन ने, हमरे संग में सिगरे उतपात।
काह कहें हम जानत हौ, बहु कष्ट सहे बन में बसि तात॥
है गणना हमरी अरि में, अब कैसे करैं गुरु गात अघात।
ताते कृपा करि किंकर पै, करिये प्रथमै हम पै शरपात॥

अर्जुन के इच्छानुसार द्रोण ने जो वाण चलाया उसे अर्जुन ने बीच ही में काट गिराया। अब क्या था दोनों ओर से भीषण युद्ध होने लगा। यथा—

सवैया।

वर्षि रहे बर बानन को, जल बाहन ज्यों बरसावत बारि।
काटत अस्त्रहिं अस्त्रन ते, पुनि मारत दांव विचारि विचारि॥
दानव देव समान करैं, बड़ सँगर दोउ किये चख चारि।
कर्तव्य कला कछु जानि न जाति, लड़ैं गुरु शिष्य प्रचारि प्रचारि॥

रोला।

तहां अर्जुन अरिन के गण कवच काटत गात।
शब्द होत अघात गिरि पर बज्र कैसो पात॥ १॥
द्रोण सेना भरी शोणित लसी ऐसी सर्व।
भरो सुमन समूह किंशुक विपिन मनहु अखर्व॥ २॥

काटि सेना दई अर्जुन द्रोण की अति उद्ध ।
धुनत धनु दोउ चाहि जय रव भरे आतुर क्रुद्ध ॥ ३ ॥
गांडीव धनु ते मुक्त करि अतिमान अर्जुन बान ।
छाय लीन्हों द्रोण को रथ सघन सलभ समान ॥ ४ ॥
जिष्णु के शरजाल में लखि मुंदो द्रोण उदार ।
चहूँ दिशि ते लगे सैनिक करन हाहाकार ॥ ५ ॥
रथन को समुदाय लीन्हे द्रोण सुत तव धाय ।
तात को शर संकुलित लखि कियो आप सहाय ॥ ६ ॥
पाय अन्तर वेग सों रथ हांकि द्रोणाचार्य्य ।
छिन्न ध्वज वर बर्म भाजे युद्ध रति तजि आर्य्य ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य्य के हार जाने पर अर्जुन के सामने किसी भी वीर के आसन न जमे। दुर्योधन की आशाओं पर पानी फिर गया। वे निराश और दुःखी होकर हस्तिनापुर की ओर पधारे। इधर अर्जुन ने गौवें छुड़ा विराटपुरी में आकर बड़े भाई के चरण छुए।

युद्ध का उद्योग।

अपनी बड़ी भारी विजय देख कर और पाण्डवों का सच्चा हाल जान कर राजा विराट के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दिया। इस विवाह में श्रीकृष्ण और राजा द्रुपद

आदि सब सम्बन्धी पाण्डवों की ओर जमा हुए।

अब पाण्डवों का १२ वर्ष बनबास और एक वर्ष गुप्तवास का समय समाप्त हो चुका था। इसलिए इन्होंने अपना आधा राज्य लेने के लिए कृष्ण की समति से उद्योग करना आरम्भ किया। राजा द्रुपद के कथनानुसार राजाओं के पास दूत भेजे गये। देश देश के राजा अपनी सेना लिये हुए महाराजा युधिष्ठिर की सेना में उपस्थित हुए। सात अक्षौहिणी सेना, राजाओं के झुंड और नीतिज्ञ कृष्ण की सहायता से पाण्डवों की शक्ति महान हो गई।

राजा विराट ने कृष्ण की सम्मति से युद्ध के लिए सभा की। आये हुए राजा अपने अपने आसनों पर बैठे। श्रीकृष्णचन्द्र और भाइयों के सहित महाराजा युधिष्ठिर भी सिंहासन पर इन्द्र के समान विराजमान हुए। श्रीकृष्णजी ने युद्ध का प्रश्न उठाया। सबों ने यही कहा कि अपना आधा राज्य लेने के लिए दुर्योधन के पास दूत भेजा जावे और नियमानुसार राज्य न मिलने पर युद्ध घोषणा की जावे।

दुर्योधन भी विराटपुरी में अर्जुन से पराजित होने पर पाण्डवों के हर एक काम को बड़ी गहरी दृष्टि से देखा करते थे। उन्होंने भी पाण्डवों की ओर से युद्ध की तैयारी जान कर अपने पक्ष के राजाओं को निमन्त्रित किया। बड़े बड़े शूर सामन्त

राजे महराजे ११ अक्षौहिणी सेना को साथ में लिए हुए उनके
यहां आये।

महाराज युधिष्ठिर की ओर से द्रुपदराज के पुरोहित दूत
बन कर दुर्योधन की सभा में पहुँचे। जब उनके न्याय से भरे
हुए बचनों का प्रभाव दुर्योधन के हृदय पर न पड़ा तब स्वयं
श्रीकृष्णजी लोक रक्षा के लिए कौरवी सभा में पधारे। वहां पर
उन्होंने धृतराष्ट्र आदि कुरुवंशियों के सामने पाण्डवों की धर्म्म-
परायणता, वीरता और आधा राज्य मिलने के अधिकार का
चित्र खींच दिया। फिर युद्ध के भयङ्कर परिणाम में कुरुवंश के
नाश होने का शोक प्रकट किया। उस समय सभा में बैठे हुए
सभी लोगों का ध्यान कृष्ण की ओर खिंच गया। लेकिन दुर्यो-
धन के हृदय पर उन बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

सभा में बैठे हुए ऋषि, मुनि, भीष्म और विदुर ने उन्हें
बहुत कुछ समझाया। तब द्रोणाचार्य्यजी भी बोले—हे दुर्योधन!
अब तक अर्जुन ने चर्म धारण नहीं किया। अब तक उन्होंने
ईस्पात की जाली का कोट नहीं पहना। अब तक भी गाण्डीव
धन्वा पर उन्होंने प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ाई। अब तक भी पुरोहित
धौम्य ने विजय पाने के लिए यज्ञ सम्बन्धी अग्नि में आहुतियां
नहीं डालीं। इससे अब भी भूल सुधार लेने का समय है। अब
भी कुमार्ग को छोड़ कर सुमार्ग में आने के लिए अवकाश है।

अब भी होने वाला महा भयङ्कर मनुष्य-नाश निवारण किया जा सकता है। इसलिए--

जयकरी।

तात करो सम्मत अवदात। नातरु होन चहत उतपात॥
क्षात्र वंश पर प्रलय महान। होइहि जानो इतो निदान॥
तव विक्रम रवि होइहै अस्त। पाण्डव लहिहैं भूमि समस्त॥
मो मन में संशय नहिं और। इतो शोच सो कहत सडौर॥
प्राण सरिस पाण्डव प्रिय मोहिं। तिनसों लरन परी विधि जोहि॥
ताते शतधा सिखवत नीति। सम्मत करो प्रकट करि प्रीति॥

दुर्योधन ने और किसी की बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। केवल कृष्ण की बातों का वे कठोरता पूर्वक उत्तर देने लगे—

हे वासुदेव! आप और आप के कथनानुसार भीष्म, द्रोण आदि भी हमारी निंदा करते हैं। सब लोग हमी को दोषी ठहराते हैं। परन्तु हमने जहां तक विचारा हम अपने को अपराधी नहीं पाते। युधिष्ठिर को जुआं खेलने का चिस्का लगा। वे उसके दांव पेंच को अच्छी तरह नहीं जानते थे। इस कारण शकुनी से अपना सब कुछ हार गये। हमने दया करके उनका हारा हुआ धन लौटा दिया। लेकिन दुबारा बनवास की प्रतिज्ञा दांव पर लगा कर फिर खेले और फिर हारे। इसमें हमारा क्या दोष। अब सैन्य संग्रह करके हमको धमकाते हैं। हमसे आधा

राज्य मांगते हैं। मांगने से राज पाट ऐसी चीज़ें नहीं मिलतीं।
हम क्षत्रिय हैं। इसलिए बिना युद्ध के सुई की नोक बराबर
भूमि भी नहीं दे सकते।

दुर्योधन की बातों से श्रीकृष्णजी को कुछ क्रोध आ गया।
वे बोले—

हे दुर्योधन ! हमें जान पड़ता है कि अब तुम समर में ही
बाणों की सेज पर सो कर अपनी इच्छा पूरी करोगे। हे भरत-
कुल के कलङ्क ! लड़कपन में तुमने भीमसेन को विष दिया।
पाण्डवों को वारणावर्त नगर में भेजकर माता सहित उन्हें
जलाना चाहा। अबला द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया।
जुएं में भी छल के पांसे फेंक कर पाण्डवों का मौरूसी राज्य
छीना। तब भी अपने को निर्दोषी ही कहते हो। अब पाण्डव
धर्म्म से अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके और वे प्रेम से शान्ति
पूर्वक अपना राज्य मांगते हैं तो तुम लौटाते नहीं। याद रक्खो
अगर तुम गुरुजनों की शिक्षा पर अमल नहीं करते तो अवश्य
दोषी हो। यही नहीं समय आने पर इस दोष का फल भी जो
होना चाहिए वह भी तुम्हें अवश्य मिलेगा। पाप का फल कभी
निष्फल नहीं जाता। हमें विश्वास है कि भीष्म और द्रोण आदि
बृद्धजन इस विषय पर ठीक ठीक विचार करेंगे।

श्रीकृष्णजी कह ही रहे थे कि दुःशासन सभा के लोगों का
मन परख कर दुर्योधन को वहां से उठा ले गये। उनके साथ

कर्ण और शकुनी भी चले गये। तब श्रीकृष्ण भीष्म और द्रोणाचार्य्य आदि को सम्बोधन करके कहने लगे—

हे वृद्ध जनों !

(चरणाकुलक)

सब के वचन सरस हित साने। दुर्योधन नहिं हितकर जाने ॥
सब कहँ निहरि जात भो उठि कै। यहिअभिमानपसार्‍यो सुठि कै ॥
हठ गहि करि मन्त्री दुरमग के। नाशन चहत सकल जन जगके ॥
ताते तुम सब सम्मत करि कै। जगतबचावहुविधिअनुसरिकै ॥
यहि विधि कंस राज मद मातो। धर्म्म छांड़ि अधरम रँग रातो ॥
ताको अधरम कर्म्म निरेखी। सब यदुवंशिन मत अवरेखी ॥
कीन्हें तासु त्याग गुणि मन सों। तबहमताहिकियोवध प्रण सों ॥
तब ते भो यदुवंश सुखारी। जानत हो तुम सब नयचारी ॥
विनसै जगत एक के रोषन। तौ तेहि गहि बांधौ कछुदोषन ॥
कर्ण दुशासन शकुनि कुमन्त्री। दुर्योधन कुल नाशक तन्त्री ॥
इन्हैं पकरि यह नीति विचारी। सविधि करौ कारागृह चारी ॥
यह कीन्हें सब जग जन वांचत। अनरथ मिटतसुखदमुद रांचत ॥

धृतराष्ट्र कृष्ण की बातें सुन कर थर्रा गये। उन्होंने विदुर से गान्धारी को बुलवा कर दुर्योधन को बहुत कुछ समझवाया। लेकिन कुछ फल नहीं हुआ। यह सब देख श्रीकृष्णजी राजसभा से उठ खड़े हुए। फिर कुन्ती से जाकर मिले। उन्हें धीरज

बँधाकर विराटपुरी में पाण्डवों के यहां पहुँचे वहां उन्होंने पाण्डवों से कौरवों की सभा का सारा हाल वर्णन किया। अन्त में उन्होंने कहा—

हे धर्म्मराज ! हमने शान्ति के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया। हमारे सब उपाय निष्फल हुए। अब एक युद्ध ही का उपाय बाक़ी है। यही एक राज्य मिलने का द्वार है। इससे क्षत्रियत्व का तेज धारण करो। इसी तेज में पड़ कर आप के बैरी पतंगों के समान जलेंगे। शान्ति की पुकार मचाने से काम न चलेगा।

युद्ध की तैयारी।

कृष्ण की बातों को सुन कर युधिष्ठिर ने सभा की। सभी पराक्रमी योधा सभा में बैठे। सबों ने श्रीकृष्ण की भांति उन्हें युद्ध करने की सलाह दी। फिर क्या था जुझाऊ बाजा बजने लगे। सात अक्षौहिणी सेना सज धज कर तैयार हो गई—

पाण्डवों ने द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को अपना सेनापति बनाया। अर्जुन सबकी देख रेख में रहे। व्यूह बांध कर सब सेना विराटपुरी से चल कर कुरुक्षेत्र में आकर डट गई।

दुर्योधन भी असावधान न थे। पाण्डवों को कुरुक्षेत्र में आया हुआ जानकर उन्होंने भी ग्यारह अक्षौहिणी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। भीष्म सबके सेनापति हुए। द्रोणा-

चार्य्य सब के रक्षक रहे। इस प्रकार वे भी धूम धाम के साथ कुरुक्षेत्र में पाण्डवों के मुक़ाबिले आकर जम गये।

युद्ध के लिए आज्ञा मांगना।

दोनों पक्ष के योधा युद्ध करने के लिए व्यूह बांध कर खड़े हो गये। उस डटा डटी के समय में युधिष्ठिर रथ से उतरे और सीधे शान्ति भाव से भीष्म की ओर चल दिये। यह देख कौरवों ने समझा कि युधिष्ठिर हमारी बड़ी शक्ति को देख कर डर गये हैं। इससे वे भीष्म के पास सुलह करने के लिए जा रहे हैं।

इस प्रकार अकेले युधिष्ठिर को शत्रुओं की सेना में जाते हुए देख कर पाण्डवों के हृदय में भांति भांति के विचार उठने लगे। सभी वीर आश्चर्य में आ गये। उस समय श्रीकृष्ण ने कहा—

चौपाई

वन्दि गुरुन कहँ कारज करई। सो जय लहै न टारे टरई॥
सर्वशास्त्रविद नृप नय गामी। जात गुरुन पहँ जययशकामी॥

युधिष्ठिर ने कौरवी सेना में भीष्म के समीप जाकर उनके कमल चरणों की बन्दना की। फिर वे हाथ जोड़ कर कहने लगे—हे तात! आप युद्ध के नाशकारी परिणामों को जानते हैं। उन्हीं फलों को विचारने से युद्ध करने की मेरी इच्छा नहीं है।

इसीलिए आप से आज्ञा मांगने के लिए हम आप के पास आये हैं।

युधिष्ठिर के नम्रता से भरे हुए शिष्टाचार के ऐसे बचन सुनकर भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे पुत्र! अनर्थ का मूल नाश करने के लिए जो तुम मेरे पास आये हो इससे हम बड़े प्रसन्न हैं। हे धर्म्मराज! पापी दुर्योधन के कारण युद्ध अवश्य होगा। क्या करें—सभी मनुष्य धन के दास होते हैं। धन मनुष्य का दास नहीं होता। हम दुर्योधन की धन की फंसरी से बंधे हुए हैं। इसलिए उनकी ओर से लड़ने के लिए खड़े हैं।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! आप कौरवों की ओर ही से लड़िए। लेकिन हमें भी विजय देने वाली हितकारी सलाह दीजिए।

तब भीष्म ने कहा—धर्म्मराज ! इस समय आप की भलाई का उपाय हम से कहा नहीं जाता। छल को छोड़ कर कौरवों की ओर से लड़ना ही हमारा धर्म्म है। देखो—हमसे युद्ध करके जो जय पावे ऐसा पृथ्वी पर कौन है? मनुष्यों और राजाओं की क्या शक्ति? इन्द्र भी हमसे जीतने योग्य नहीं हैं। हे पुत्र! इस समय जाओ। फिर कभी आना।

भीष्मजी के पास से बिदा होकर युधिष्ठिर अपने गुरु द्रोणाचार्य्यजी की सेवा में पहुँचे। बड़े सम्मान से उनको प्रणाम

किया फिर हाथ जोड़ कर अपने उन्हीं विचारों को गुरु से कहने लगे जो भीष्म से कहे थे। द्रोणाचार्य्यजी ने भी उन्हें भीष्म के समान उत्तर दिया। युधिष्ठिर के आने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कहने लगे—हे शिष्य ! अपनी ओर लड़ने को छोड़ कर मन चाहा वर मांग लो। हम इस समय तुम्हारे इस शिष्टाचार से तुम पर बड़े प्रसन्न हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे गुरो ! हमको विजय देने वाली कोई युक्ति आप ही बताइए।

इसके उत्तर में द्रोण ने कहा—

सवैया।

भाषत हैं हम जो यहि काल सुनो तुम तात इतै करि कान।
कौरव को हित सोचि जबै रण में कर में धरिहौं धनु बान॥
संशय नेकु नहीं इसमें करिहैं तुरतैं अरि प्राण पयान।
को जनम्यो जगतीतल में हम से करिहै रण जो प्रण ठान॥

हे राजन् ! जब तक हम समर में धनुष बाण धारण किये रहेंगे तब तक तुम्हारी जीत होना कठिन है। जब हम शस्त्र को छोड़ दें तब श्रीकृष्णजी से अपनी जीत का उपाय पूँछ लेना। वे तुम्हारे मन्त्री हैं। नीति में बड़े कुशल हैं। जैसा वे कहें वैसा ही करना। उस समय तुम्हारी जीत अवश्य होगी।

इसके बाद युधिष्ठिर युद्ध की आज्ञा मांगने के लिए कृपा-

चार्य्य और शल्य के पास पहुँचे। उनसे भी मन चाहा वर पाकर अपने रथ पर लौट आये।

समरज्वाला।

युधिष्ठिर के रथ पर विराजमान होने के पीछे दोनों ओर की सेनाओं में रण भेरियां बजने लगीं। बाजों को सुन कर अभिमान से भरे हुए योधा तृण समान प्राणों को समझ कर युद्ध के लिए उत्साहित हुए। उस समय दुर्योधन की आज्ञा से वीरवर दुःशासन सेनापति भीष्म को आगे किये सेना सहित पाण्डवों की ओर बढ़े। पाण्डव भी भीमकर्म्मा भीम को आगे किये सेना सहित भीष्म के सम्मुख हुए। युद्ध आरम्भ हुआ। भाई भाइयों के सिरों को काटने लगे। समरक्षेत्र में रुधिर की नदियां बहने लगीं। क्षात्र धर्म्म पालन करने में किसी वीर ने कमी नहीं की। द्रोणाचार्य्य जी ने भी भीष्म के साथ रह कर अपनी अनोखी वीरता दिखाई। संकट के समय घटोत्कच आदि वीरों से दुर्योधन के प्राण बचाये।

बाल ब्रह्मचारी भीष्म दस दिन तक प्रलयकारी युद्ध करके अनुपम वीरों के समान बाणों की शय्या पर लेट गये। उस समय कौरवों के शोक का ठिकाना न रहा।

आचार्य्य का सेनापति होना।

जब भीष्मजी शरशय्या पर सो रहे तो दुर्योधन के चित्त में

चिन्ता उत्पन्न हुई कि सेनापति कौन बनाया जाय। उन्होंने इस विषय में अपने मित्रों से सम्मति ली। कर्ण ने द्रोणाचार्य्यजी के लिए कहा। तब वे इष्ट मित्रों को लिए हुए आचार्य्यजी के पास गये और उनका अभिवादन कर हाथ जोड़ इस प्रकार विनय करने लगे—

जन्म लियो द्विज के कुल में सब भांति सुपूज्य अहौ द्विजराज।
नीति क्रिया बुधि वैभव में गुरुराज समान अहौ गुरुराज॥
अस्त्र विधान निधान महान अहौ बलवान यथा सुरराज।
सेवक जानि बनो गुरु सेनप देवहु राज दया करि आज॥

यह सुनकर द्रोणाचार्य्य ने कहा—

तात बनाय चमूपति मोहिं धर्‍यो गुरु के सिर पै गुरुकाज।
मोदित हैं तव अर्थ विचारि सजो अब चाव भरे रणसाज॥
अस्त्र महा करिहैं सब दर्शित जौन दिये हमको भृगुराज।
पाण्डव को बल मर्दित कै हम देवहिं मोद तुम्हैं कुरुराज॥

दोहा।

पै इतनो हम कहत हैं, सुनहु खोलि दोउ श्रौन।
धृष्टद्युम्न न वध्य है, प्रगटित कारण तौन॥

दुर्योधन ने विधान के सहित द्रोणाचार्य्य को सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया। भीष्म के शरशय्या पर पड़ रहने से जिन वीरों की युद्ध करने की उमंग न रही थी वे अब द्रोणा-

चार्य्य को अपना सेनापति देख कर फिर युद्ध के लिए उत्साही हुए। उस समय सेना में अगणित बाजे बजने लगे। वन्दीजनों ने स्तुति गान किया। ब्राह्मणों ने जयति शब्द कह कर आशीर्वाद दिया। सेनापति का पद प्राप्त होने पर द्रोणाचार्य्यजी बहुत ही प्रसन्न होकर दुर्योधन से कहने लगे—

जयकरी।

भीषम के पीछे हित जोहि। तुम कीन्हों सेनापति मोहिं।
ताते हम प्रसन्न यहि काल। मांगहु इच्छित सुबर रसाल॥

उस समय कर्ण और दुःशासन आदि से सम्मति लेकर दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य्य! यदि आप हम पर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीता पकड़ कर हमारे पास ले आइए। यही हमारी इच्छा है।

इसके उत्तर में द्रोणाचार्य्य ने कहा—युधिष्ठिर को धन्य है। जिनके शत्रु भी पकड़ना चाहते हैं। नाश की इच्छा नहीं रखते। क्यों न हो धर्म्म का भाव ही धर्म्मराज में ऐसा अनुपम है जिससे अहित करनेवाले भी सुन्दर हित ही अनुरूपते हैं।

इस प्रकार धर्म्मराज की बड़ाई सुन कर दुर्योधन अपने मन का छल प्रकट कर कहने लगे—

जयकरी।

हे आचार्य्य सुनहु मम नीति। धर्म्महिं मारि न पाउब जीति॥

नृपति युधिष्ठिर को वध देखि। सब कहँ बधी पार्थ भट तेखि॥
सब पाण्डव कहँ मारे जौन। ऐसो बीर सुरासुर कौन॥
बधहि पांच में जो भट एक। नाशहिं सब कहँ सो गहि टेक॥

दोहा।

ताते यह मत उचित है, धर्म्म नृपति गहि लाय।
खेलि द्यूत फिरि जीति कै, बन कहँ देहु पठाय॥

इस बात को सुनकर द्रोणाचार्य्य ने यह उत्तर दिया—

सोरठा।

करि अद्भुत रणरंग, तब हम भूपति सकब गहि।
जो न रहै नृप संग, अरिकुल दाहक पार्थ भट॥

चौपाई।

रण में पाहत पारथ जाही। पकरि न सकैं इन्द्र यम ताही॥
भूप सुवीर पार्थ युत जबलौं। रवि सम गहिबो योग न तब लौं॥
ममसुशिष्यअरुतरुण उजागर। धर्म्मशील विक्रम को सागर॥
दिव्य अस्त्र देवन सों लहिकै। हम सों अधिक भयो ब्रत गहिकै॥
तापै केशव तासु सहाई। ता ढिग धर्म्महिं सकब न पाई॥
ताते तुम सब सम्मत करि कै। रचि उपचार चाव सों चरि कै॥
पार्थहिं कीन्हेउ नृप ते न्यारे। नृपहिं देब हम हाथ तुम्हारे॥

आचार्य्य की प्रतिज्ञा को सुन कर दुर्योधन और उनके मित्र बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने धर्म्मराज को अपने हाथ ही में

आया हुआ समझा ।। इधर पाण्डव भी कौरवों की ओर से अचेत न थे। परपक्ष का हाल जानने के लिए उनके गुप्तचर लगे हुए थे। उन्होंने आचार्य्य की प्रतिज्ञा का समाचार जाकर युधिष्ठिर से कहा। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण, अपने भाइयों और सेना के वीरों को निकट बुला कर गुप्तचरों से सुनी हुई आचार्य्य की प्रतिज्ञा कही। तब वीरवर अर्जुन अपने भाई को धीरज बंधाते हुए बोले—

हे धर्म्मराज ! हमारे जीते जी कुरुराज की यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। आचार्य्य जी क्या, इन्द्र से भी वरदान पाकर वे आप को पकड़ नहीं सकते।

प्रलयकारी युद्ध ।

अब ग्यारहवें दिन का युद्ध आरम्भ हुआ। सेनापति द्रोण ने सेना का शकट-व्यूह बना कर युद्धस्थल की ओर प्रस्थान किया। कृप, कृतवर्म्मा और दुःशासन आदि वीर द्रोण की रक्षा करने के लिए उनकी बाईं ओर नियत हुए। जयद्रथ, कलिंग नरेश और धृतराष्ट्र के पुत्र उनकी दाहिनी ओर रहे। भद्रनरेश आदि वीरों के साथ दुर्योधन और कर्ण आगे हुए।

युधिष्ठिर ने दुर्योधन का शकट-व्यूह देख कर क्रौंच-व्यूह बनाया। व्यूह मुखमें वीर वर अर्जुन और यथा योग्य स्थानों में भीम आदि योधा खड़े होकर शंखध्वनि करने लगे। फिर क्या था।

चौपाई ।

दुंदुभि शंख आदि सब बाजे । अगणित दुहूं ओर सों गाजे ॥
भरो वीररस सब के मन में । लागो होन युद्ध तेहि छन में ॥
माचत भयो युद्ध अति घोरा । पूरि रहे आयुध दुहुं ओरा ॥
बढ़ि २ योधा भरि २ रिस सों । डारन लगे अस्त्र दुहुं दिशिसों ॥
थिरु रहु खरो देखु बकि २ कै । मारन लगे बाण तकि तकि कै ॥
मारु बचाव आव कहि कहिकै । झेलन लगे शक्ति गहि गहि कै ॥

उस समय आचार्य्य मेघ वुन्दों के समान बाणों की वर्षा करते हुए दामिनी के समान दोनों दलों में दमकने लगे । जिस प्रकार जलती हुई अग्नि वन में अपना भोग पाकर प्रचण्ड होती है उसी प्रकार आचार्य्य अपने महान् पुरुषार्थ से दैवी अस्त्रों को प्रकट करके पाण्डवों की सेना भस्म करने लगे । द्रोणाचार्य्य को अपना दल मर्दित करते हुए देख कर पाण्डव द्रोपदी के पांच पुत्र, वीरवर अभिमन्यु, द्रुपद, विराट, सात्यकि आदि महारथियों ने आचार्य्य का अनुरोधन किया । यह देख कौरव सेना के वीर दुर्योधन, कृपाचार्य्य, कृतवर्मा, शल्य, जयद्रथ, कर्ण, भूरिश्रव और भगदत्त आदि अपने समान वीरों से भिड़ कर घोर युद्ध करने लगे । भीमसेन आदि वीरों ने कौरवों की सेना में प्रलय मचा दी । उस समय आचार्य्य अपनी सेना को विचलित देख क्रोध की मूर्ति बन वाणों का दुसह दुर्दिन करते हुए युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से पाण्डवों के दल में घुसे ।

दोहा ।

बरसत सर मर्दत भटन, चलो भूप की ओर ।
हने युधिष्ठिर द्रोण कहं, तीक्षण बाण अथोर ॥
काटि बाण सब भूप के, काटि कठिन कोदण्ड ।
चलो वेग सों ग्रहण को, द्रोणाचार्य्य प्रचण्ड ॥

सोरठा ।

धृष्टद्युम्न रणधीर, तिहि क्षण कढ़ि आवत भयो ।
भयो युद्ध गंभीर, धृष्टद्युम्न अरु द्रोण सों ॥

चौपाई ।

तहां द्रोण अति विक्रम कीन्हों । सब दिशि शरपंजर करि दीन्हों ॥
द्वादश बाण शिखंडिहिं मारे । उतमौजा पहं बीस प्रहारे ॥
हने पांच शर नकुल सुवीरहिं । हने सात सात्त्विकि रणधीरहिं ॥
द्वादश बाण भूप के तन में । हने सात सहदेवहिं छन में ॥
दशशरमारिमत्स्यपतिराजहिं । व्यथित कियो पर सैन दराजहिं ॥
इमिहनिसबकहँमोहितकरिकै । चलो भूप पहं प्रण अनुसरि कै ॥
तेहि क्षण हांकि जुगन्धरराजा । भिरत भयो बढ़ि सैन समाजा ॥
भल्लप्रहारिताहि बधि आरज । बहुरि भूप पहं चलो अचारज ॥
तबफिरिबढ़िकीन्हों अवरोधा । पांच भाय केकयपति योधा ॥
द्रुपद विराट सात्विकी बीरा । सिंहसेन शिवि भट रणधीरा ॥
व्याघ्रदत्त ये सब भटनायक । भिरे द्रोण सों बरसत शायक ॥
काटिअसंख्यन शरसब ही के । द्वै द्वै करि सब के धनु नीके ॥

वधिकै व्याघ्रदत्त बल ओकहिं। भेजि सिंहसेनहिं यम लोकहिं॥
सब दिशि सेतु शरन के जोरे। गयो धर्म्म के रथ के धोरे॥

आचार्य्य के ऐसे पुरुषार्थ को देख कर पाण्डवपक्ष के महारथी तक आपस में कहने लगे—

सवैया।

नाहिं लखात कोऊ अस वीर करै अब जो गुरु को अवरोधन।
पारथ हू रथ लै गयो दूरि करैं मन को अब का विधि बोधन॥
बाणन वन्हि रह्यो बरसाय प्रदाहत पाण्डव पक्ष सुयोधन।
आशुहिं धर्म नरेशहिं को गहि चाहत देन अभै दुरयोधन॥

निदान पाण्डवों की सेना में हाहाकार मच गया। कोई भी धीर धीरज को न रख सका। रखता कौन? जो उन्हीं के समान शक्तिशाली होता। निस्सन्देह शक्ति की महिमा अपार है। शक्ति ही के संहर्ष से मनुष्य मनोर्थ पूर्ण कर सकता है।

उसी समय शक्तिधर अर्जुन अपने रथ को वायु के समान हांक कर युधिष्ठिर के पास आ गये। उन्होंने आते ही द्रोणाचार्य्य के ऊपर वाणों का जाल रच दिया। अब द्रोणाचार्य्य ने भी समझ लिया कि पापी का साथ देने से कुगति होती है। अब धर्म्मराज पापी दुर्योधन के आधीन नहीं हो सकते। अब रण त्याग देने ही में भलाई है। इसलिए वे रथ को लौटा कर दुर्योधन के पास आ गये। इतने में सन्ध्या हो गई। सब राजाओं ने अपने अपने

शिविरों में जाकर आहार विहार किया।

आचार्य्य प्रथम दिन के युद्ध की गति रात्रि में विचार कर दुर्योधन से कहने लगे—हे राजन्! प्रथम ही हमने कहा था कि जब तक धर्म्मराज के समीप धीर धुरीण अर्जुन रहेंगे तब तक हम क्या इन्द्र भी उनको पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकते। इस-लिए इसका उपाय यह किया जाय कि कोई महारथी अर्जुन को दूसरे स्थान में युद्ध करने के लिए ले जावे। तब हम सब को पराजित करके युधिष्ठिर को पकड़ कर तुम्हारे पास ला देंगे।

द्रोणाचार्य्य की इस युक्ति को सुन कर त्रिगर्तराज ने सेना सहित पांचों भाइयों को बुलाकर दुर्योधन से कहा—हे महाराज! हमारा और अर्जुन का सदा से वैमनस्य रहा है। इस कारण हम लोग अग्निदेव को सामने रख कर स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से यह शपथ करते हैं कि जब तक शरीर में प्राण रहेंगे तब तक अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।

दूसरे दिन रणभूमि में त्रिगर्त लोगों ने अर्जुन को युद्ध के लिए आवाहन कर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज! त्रिगर्त लोग हमें युद्ध के लिए ललकार रहे हैं। इसलिए उनके साथ युद्ध करने के लिए दक्षिण की ओर जाने की हमें आज्ञा दीजिए।

युधिष्ठिर बोले—हे अर्जुन! महाबली द्रोणाचार्य्य ने जो

प्रतिज्ञा की है उसे तो तुम जानते ही हो। इसलिए हमारी रक्षा का उपाय किये बिना युद्ध के लिए न जाना। अर्जुन ने कहा— हे धर्मराज! जब तक महारणधीर सत्यजित जीवित हैं तब तक कोई वीर आप को पकड़ नहीं सकता। जो वे युद्ध में मारे जावें तब आप युद्ध त्याग कर हमारे पास चले आइएगा।

इस प्रकार कह कर और भाई से आज्ञा लेकर वे त्रिगर्त लोगों से लड़ने चले गये और वहां उनके दल में प्रलय मचा दी।

इधर द्रोणाचार्य्य ने अर्जुन को गया हुआ जान कर गारुड़ व्यूह का निर्माण किया। पाण्डवों की ओर द्रुपद के पुत्र सेनापति धृष्टद्युम्न ने उसके जवाब में अपना अर्धचन्द्राकार व्यूह रचा। फिर युधिष्ठिर को सन्तोष देते हुए रण दुंदुभी बजवाई। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। वीर गण प्राणों की आशा छोड़ एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय द्रोणाचार्य्य मण्डलाकार धनुष को लिए हुए अनेक अमोघ अस्त्रों से वीरों को भयातुर करते हुए युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए चले। यह देख कर सत्यजित राजा ने बाणों की झड़ी लगा दी और आचार्य्य के वेग को उसी स्थान पर रोक दिया।

आचार्य्य और सत्यजित का युद्ध।

चौपाई।

भिरो सत्यजित द्विज सों तैसे। भिरे बृत्र वासव सों जैसे।
दोऊ वीर बांकुरे गाये। मत्त मतंग सरिस रिस छाये॥

धीर धुरीण धनुषविधिचरिचरि। तोमरभल्लनकीझरिकरिकरि॥
भरे गर्व भिरि सहित समाजा। घोर युद्ध कीन्हों जय काजा॥
वरषि सत्यजित शर वर धर के। काटि अनगिने शर द्विजवर के॥
पांच सुवाण सूत कहं मारे। दश दश शर सब हयन प्रहारे॥
उभय पार्श्व रक्षित के तन में। द्वादश शर मारे तेहि छन में॥
बहुरि विरचि बाणन के सेतुहिं। काटत भयो द्रोण के केतुहिं॥

द्रोणाचार्य्य सत्यजित की इस वीरता को देख कर महा क्रोधित हुए। उन्होंने सत्यजित के सहायक बृक को मार डाला। फिर अर्धचन्द्राकार बाण से सत्यजित का शिर काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय पुरुष सिंह आचार्य की डपटों और दावानल के समान बाणों की लपटों को पाण्डवों की सेना का एक भी वीर सहन न कर सका। उन्होंने प्रलय काल के रुद्र के समान रणभूमि में विहार करके श्रोणित की सरिता बहा दी। यह देख दुर्योधन प्रसन्न हो कर्ण से कहने लगे—हे मित्र! देखो, इस समय कोई भी वीर आचार्य्य के सम्मुख ठहर नहीं सकते। जिस प्रकार सिंह को देख कर मृग गण भागते हैं उसी प्रकार पाण्डव दल के वीर आज आचार्य्य को देख कर भाग रहे हैं। केवल भीम क्रोध से भरे हुए अकेले खड़ लड़ रहे हैं। उन्हें भी मार कर आचार्य्य मेरा मनोर्थ सिद्ध करना ही चाहते हैं।

यह सुन कर कर्ण ने कहा—हे राजन्! ऐसा कौन वीर है जो भीम का अवरोधन कर उन्हें मार सके? देखो भीम की

भयंकर गर्जन को सुन कर धृष्टद्युम्न आदि महारथी लौट पड़े हैं। अब आचार्य्य पर दुसह युद्ध का भार पड़ेगा।

कर्ण के वचनों को विचार कर ससैन्य दुर्योधन आगे बढ़ कर आचार्य्य की सहायता करने लगे। फिर क्या था ? दोनों ओर से प्रलयकारी युद्ध होने लगा।

इधर अर्जुन भी संसप्तक गणों को जीत कर अपने दल में आकर मिल गये । जिससे आचार्य्य दूसरे दिन के युद्ध में भी युधिष्ठिर को न पकड़ सके।

तीसरे दिन का युद्ध।

दूसरे दिन के युद्ध में आचार्य्यजी की प्रतिज्ञा पूर्ण न होने से राजा दुर्योधन के शोक का ठिकाना न रहा। वे तीसरे दिन प्रातःकाल ही आचार्य्य के समीप जाकर हाथ जोड़ कर विनय करने लगे—

जयकरी।

रण में देखि आपु को कर्म्म। हमैं पर्‍यो यह जानि अधर्म्म॥
मम ममशत्रुन मधि सम प्रीति। करि राखततुम युग दिशि रीति॥
ताते नृपहिं निकट ह्वै पाय। गह्यो न तुम प्रण दयो भुलाय॥
जो तुम गहन चाहते ताहि। तौ न सकत यम शक्रौ पाहि॥

यह सुनकर आचार्यजी उन्हें समझाकर कहने लगे–हे राजन! एक तो अर्जुन स्वयं वीरों में प्रधान वीर हैं, दूसरे उनके सहायक

श्रीकृष्णजी हैं। इस कारण उनसे विजय प्राप्त करना साधारण बात नहीं है। तुम शोक मत करो। आज हम ऐसा व्यूह निर्माण करेंगे जिससे पाण्डवों का एक महारथी समर में मारा जावेगा। संसप्तक गणों से कह दो कि वे अर्जुन और श्रीकृष्ण को दूसरे स्थान में युद्ध में ले जावें। उनका यहां रहना अच्छा नहीं है। वे हमारी व्यूह रचना के सारे भेदों को जानते हैं।

आचार्य्य-प्रण को सुनकर दुर्योधन अति प्रसन्न हुए। संसप्तक गण भी दुर्योधन की आज्ञा से अर्जुन को दूसरे स्थान में युद्ध के लिए ले गये। आचार्य्य ने चक्रव्यूह निर्माण कर पाण्डवों को युद्ध के लिए ललकारा। भीम आदि वीरों ने धनुष टंकारते हुए आचार्य्य का सामना किया। किन्तु आचार्य्यजी का विशाल पराक्रम और अद्भुत व्यूह रचना देखकर सब चकित रह गये। उस समय युधिष्ठिर ने अभिमन्यु से कहा—

दोहा।

चक्रव्यूह विरच्यो कठिन, द्रोण बुद्धि बल धाम।
हम कोऊ जानत नहीं, तासु भेद अभिराम॥
तुम अर्जुन कै कृष्ण अरु, कै प्रद्युम्न बलवान।
चक्रव्यूह के भेद कहं, जानत और न आन॥

ताते दै मम प्रिय बरदान। चक्रव्यूह भेदौ मतिमान॥
जाते पार्थ न निन्दै मोहिं। सोई करौ समौ यह जोहि॥
भेदि व्यूह मधि प्रविशौ तात। देहु मोहि जय यश अवदात॥

इसके उत्तर में अभिमन्यु ने कहा—

तव हित हेत भेदि यह व्यूह। मर्दि शत्रु को सुभट समूह॥
जाब मध्य में रचि शर सेत। पै नृप इतनो सुनो सहेत॥
व्यूह बीच जैबे की राह। हम जानत हैं सुनी सचाह॥
भीर परे कढ़िबे को ठौर। नहिं जानत सुनु नृप सिरमौर॥

युधिष्ठिर ने कहा—

राह प्रकट करि व्यूह मधि, तुम प्रविशौ बल ऐन।
सो मग गहि तव अनुगमन, हम सब करब ससैन॥

तब भीमसेन बोले—

हे प्रिय सुत! तुम व्यूह कहं, भेदि दिखावहु राह।
हम तव संग अति रथिनकहं, नाशि करब सह चाह॥
सुत तव संग लखि राह हम, धसब कढ़व वहु बार।
गने गने भट गणन कहं, पुनि करिबे संहार॥

फिर सब को धीरज बँधाते हुए अभिमन्यु कहने लगे—

चौपाई।

बाणन मर्दि शत्रु भट जूहहिं। भेदि अभेद विकट यह व्यूहहिं।
हमप्रविशततुमलखि मुदधरिये। विक्रम करत बनै सो करिये॥

इसके अनन्तर वीर बालक अभिमन्यु ने आचार्य्य के सामने अपना रथ ले चलने के लिए सारथी को आज्ञा दी। तब सारथी ने कहा—

हे वीरवर ! अभी तुम बालक हो। कभी ऐसा अकेले भयं-
कर युद्ध भी नहीं देखा है। इस कारण जिस चक्रव्यूह के
निर्म्माणकर्ता महा योधा आचार्य्यजी हैं उनके सामने चलने
का साहस न करिए। समझ बूझ कर काम करना ही बुद्धिमत्ता
की पहचान है। इसके उत्तर में अभिमन्यु बोले—

चौपाई।

कहा द्रोण आदिक भट रूरे। जिन्हैं देखि तुम भय सों पूरे॥
कृष्ण विश्वजित मातुल मम है। पिता आरजुन को जेहि सम है॥
हम लरि इन्द्रहिं जीतन चाहत। जाहि संग रहि सुर गण पाहत॥
चलहु सुरथ लै शंक बिहाई। देखहु मम विक्रम प्रभुताई॥

यह सुन कर सारथी घोड़ों को चंचल कर द्रोणाचार्य्य के
सामने रथ को ले चला। प्रबल पाण्डवों की सेना और भीमसेन
आदि योद्धा उसके पीछे पीछे चले। उस समय अभिमन्यु ऐसे
शोभा देते थे मानो इन्द्र अपनी सेना को लिए वृत्रासुर को
मारने जा रहे हों।

वीरवर अभिमन्यु ने कौरवों की सेना मर्दित कर व्यूह में
प्रवेश किया। किन्तु पाण्डव सेना के सहित व्यूह द्वार में प्रवेश
न कर सके। उनको महादेव से वर पाये हुए सिन्धु देश के
राजा जयद्रथ ने रोक रक्खा। इस समय अकेले अभिमन्यु पर
चारों ओर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा होने लगी। तब उन्होंने

क्रोध की मूर्ति बन कर द्रोणाचार्य्य और कर्ण आदि महारथियों को कई बार समर में पराजित किया। उस समय उनके साहसिक कर्म्म और अद्भुत रण कौशल को देख कर कर्ण अधीर हो आचार्य्य से कहने लगे—

हे गुरो! इन्द्र के समान युद्ध विशारद, इन्द्र के पुत्र का पुत्र सारे संग्राम का भार अपने ऊपर लिये हुए है। यह वज्र के समान अविरल बाणों को फेंक कर क्रम से सबको मारना चाहता है। यह रुद्र के समान रण पंडित है। यह दावानल के समान प्रचण्ड तेज धारण किये हुए मेरे सैन्य रूपी बन को जला कर आज ही युधिष्ठिर को विजय देना चाहता है। इस कारण आप दुर्योधन के हित के लिए इस पर दया और प्रेम को छोड़ कर इसके मारने की विधि शीघ्र ही कहिए।

यह सुन कर द्रोणाचार्य्य कहने लगे—

चौपाई।

धन्य सुभद्रा पार्थ धनुर्धर। जिन जायो यह वालक भट वर॥
सवदिशि धनुमंडलदरसावत। कोऊ सुभट सिद्ध नहिं पावत॥

दोहा।

काटत सब के वाण अरु, मारत सब कहँ बान।
निज पर शर के जाल मधि, विचरत चक्र समान॥
मारि मारि शर वज्र सम, कीन्हेसि पीड़ित मोंहि।
तऊ मोंहि अति होत सुख, तासु पराक्रम जोहि॥

कर्ण ने कहा—हे आचार्य्य ! आप की ऐसी कृपालुता से यह प्रबल भट अभिमन्यु आज ही सब कौरवों की सेना को मार कर दुर्योधन को अपने पिता का दास बनावेगा। देखिए ! इसके तीव्र बाणों की घातों से सब महारथी पीड़ित हैं। मेरे भी प्राण पखेरू इस शरीर के पिंजड़े को छोड़ कर उड़ना ही चाहते हैं। इसलिए इसके बध की युक्ति अब कृपा कर बता दीजिए। तब द्रोणाचार्य्य ने कहा—

हम अर्जुनहिं दये मन मानत। कवच अभेद्य तौन यह जानत॥
जोबधि सकहु तासु हय सूतहिं। काटि सकौ जो धनु मजबूतहिं॥
पहले विरथ विधनु करि पाछे। लहिहौ बधिबे की विधि आछे॥
सरथसधनुयहविचरत जब लौं। सकैं न जीति सुरासुर तब लौं॥

आचार्य्य की युक्ति को सुन कर कर्ण ने उसका धनुष काट डाला। भोजराज ने घोड़ों को मार गिराया। कृपाचार्य्य ने दोनों ओर के रक्षकों को मार कर सारथी का नाश किया। उस समय आपत्ति में फँसे हुए अभिमन्यु ने खड्ग, चक्र और गदा के अगणित हाथ दिखला कर अगणित वीरों का नाश कर डाला। अन्त में उन्होंने आचार्य्य की बताई हुई युक्ति के अधर्म्म समराग्नि में अपने पिता के हित के लिए अपने शरीर की आहुति दे दी और अपने वीरत्व की यशकौमुदी गमनशील जगत् में सर्वदा के लिए विकसित कर गये। वीरवर अभिमन्यु के बध से पाण्डव महा दुःखी हुए। उनमें अर्जुन के शोक का तो ठिकाना

ही न रहा। उन्हों ने पुत्र के अपराधी जयद्रथ के मारने का प्रण किया। आचार्य्य ने जयद्रथ की रक्षा का भार अपने शिर पर लिया। दोनों ओर रण भेरियां वजने लगीं।

द्रोणाचार्य्य ने शकटव्यूह, उसके भीतर सूचीव्यूह फिर उसके भीतर पद्मव्यूह निर्माण किया। जिस प्रकार कमल में बीज रहता है उसी प्रकार उन्होंने पद्मव्यूह के भीतर जयद्रथ को खड़ा किया। वहां एक लाख सेना के सहित कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य को उनकी रक्षा के लिए नियत किया। आप स्वयम् विशाल सेना के सहित शकटव्यूह के द्वार पर रहे।

इधर पण्डवों ने भी अपनी सेना का व्यूह बनाया उसके बन चुकने पर युधिष्ठिर की रक्षा के लिए उचित प्रबन्ध करके अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा—भगवन् ! हमारा रथ शीघ्र आचार्य्य के सन्मुख ले चलिए। श्रीकृष्णजी ने घोड़ों की रास उठाई और रथ को आचार्य के सन्मुख लाये। अर्जुन अपने गुरु को देख कर हाथ जोड़ विनय करने लगे—

जयकरी।

हे गुरु तव अनुकम्पा पाय। पैठि व्यूह मधि वल दरसाय॥
मर्दि सैन करि युद्ध विनोद। वधि जयद्रथहिं चहत सुमोद॥
तात रहै जाते मम टेक। उचित तुम्हें सो करब विवेक॥
पाण्डु सदृश अरु धर्म समान। केशव सम मम तोहिं न आन॥

रक्षणीय तुम कहँ अरु तात। नित आशुत्थामा गुरु गात॥
तिमि हमार रक्षण सब ठौर। है तुम कहं कर्तव्य सडौर॥
जाते रहे मोर प्रण धर्म। सोई करौ बूझि कै कर्म॥

इसके उत्तर में द्रोणाचार्य ने कहा :—

भाषत हम ये वैन यथार्थ। हमहिं विना जीते हे पार्थ॥
सिन्धुपतिहिं नहिं सकिहौपाय। ताते करौ युद्ध मन लाय॥

ऐसी बात चीत हो चुकने पर द्रोणाचार्य ने वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने भी उचित उत्तर दिया। दोनों प्रबल वीर दिव्य अस्त्रों से सृष्टिसंहारी युद्ध करते हुए रणभूमि में विचरने लगे उस समय श्रीकृष्ण दोनों वीरों को समान बल वाले समझ कर अर्जुन से कहने लगे—

हे पार्थ ! आचार्य पर विजय प्राप्त करना अति दुस्तर है यदि आचार्य से युद्ध करते रहोगे तो प्रण पूरा न कर सकोगे इसलिए इनसे युद्ध त्याग कर दूसरी ओर चलो। अर्जुन ने श्री कृष्णजी की सम्मति स्वीकार कर ली तब वे दूसरी ओर रथ हांक कर चल पड़े। उस समय आचार्य ने पुकार कर कहा—हे अर्जुन ! शत्रु को विना जीते हुए तुम ऐसे वीर को दूसरी ओर जाना उचित नहीं है यह सुन अर्जुन ने उत्तर दिया—

भगवन् ! आप हमारे गुरु आचार्य्य हैं—शत्रु नहीं हैं इस कारण आप से युद्ध न करूंगा—तदनन्तर अर्जुन ने अपना प्रण पूरा करने के

लिए काल रूप धारण किया। जो सन्मुख आया उसे मार गिराया और बाणों का जाल फैलाते हुए कौरवों की सेना में घुस गये। इधर द्रोणाचार्य भी पाण्डवों की सेना की ओर बढ़ कर धृष्टद्युम्न आदि वीरों से युद्ध करने लगे।

व्यूह के भीतर अर्जुन की कुशलता का समाचार न पाकर युधिष्ठिर अति खेदित हुए उन्होंने उनकी सहायता के लिए उन्हीं के शिष्य महारथी सात्विकि को भेजा। आचार्यजी ने उनको मार्ग ही में रोक दिया। दोनों में कठिन युद्ध होने लगा।

आचार्य बाणों से सात्विकि को छिपा कर कहने लगे—हे सात्विकि ! तुम्हारे आचार्य अर्जुन मेरे सन्मुख कायर पुरुष की भांति रण छोड़ कर भग खड़े हुए हैं फिर तुम किस प्रकार यहां से उनके समीप जीवित जा सकते हो। हां ! जिस प्रकार तुम्हारे आचार्य गये हैं उसी प्रकार निर्लज्ज होकर तुम भी जाना चाहो तो जा सकते हो। उस समय सात्विकि आचार्य की वीरता को विचार कर कहने लगे—हे आर्य ! आप हमारे आचार्य के आचार्य हैं। इस कारण आप हमारे सब प्रकार पूज्य देव हैं। हम धर्मराज की आज्ञा पाकर पार्थ के समीप जाना चाहते हैं। इसलिए हमें दया करके जाने दीजिए। रणचारी सात्विकि युक्ति से रथ को लौटा कर द्रोणाचार्य जी के बार बार ललकारने पर भी न लौटे और दूसरी ओर से कर्ण आदि वीरों की सेना को मर्दन करते हुए अर्जुन की सहायता के लिए व्यूह में प्रवेश कर

गये । उन्होंने दुर्योधन को पराजित कर शकुनी को घायल करके दुःशासन की सेना में प्रलय मचा दी । उस समय कौरवों की सेना के हाहाकार शब्द को सुन कर आचार्यजी ने सारथी से कहा कि मेरा रथ शीघ्र सात्यकि के सन्मुख ले चलो । सारथी ने व्यूह द्वार पर भीम आदि वीरों की भयंकर मार की दशा दर्शा कर आचार्य को वहां न जाने दिया । उस समय भय से भरे हुए दुःशासन रण छोड़ कर आचार्यजी के समीप भाग आये । तब वे उनकी कुदशा को देख कर फिर पाण्डवों से सन्धि करने के लिए उपदेश करने लगे—

रोला ।

कहो नृप हैं कुशल अरु, कुशल सब तो भाय ।
सिन्धुपति है कुशल, अरु कुशल भट समुदाय ॥
महारथ युवराज नृप के, वन्धु तुम मतिमान ।
युद्ध तजि कत भगे डरिके, त्यागि बल अभिमान ॥
द्रोपदी को वसन गहिके, सभा मधि तुम लाय ।
पाण्डवन के सुनत तुम, जो कहे ओज बढ़ाय ॥
जुवा में तू गई जीती, भई अब मम चेरि ।
कर्म दासिनि को करहु, अब कर्म अपनो हेरि ॥
संग ये सब सुपति तेरे, त्यागि इन को गर्व ।
उदर पालन करहु करिकै, काज खर्व अखर्व ॥
पूर्व ऐसो कहो तुमहीं, आजु तौन भुलाय ।
सात्यकी सों सकत नहिं लरि, भजत गर्व गंवाय ॥

भीम सों अरु पार्थ सों, जब मचहि संमर घोर ।
करोगे तब तुम कहा, भगि कढ़िजाहुगे केहिओर ॥
जीव लै जो भजत रण सों, सकत नहिं मरि जीति ।
करौ जैसो कहत हम जो, जौनि नृप की नीति ॥
जानि आपुहिं निबल उनसों, मानि आपनि खोरि ।
चहैं वे सब मही जितनी, देहु मिल कर जोरि ॥
मारि नृपहिं सबन्धु जौ लगि, लेहिं नहिं वे भूमि ।
देहु तौ लगि आपु सों मिलि, चरण मुख सो चूमि ॥
नतरु शंक विहाय उनसों, लरो थिरि धरि धीर ।
युद्ध में मरि लहत उत्तम, ठौर क्षत्री वीर ॥

दुःशासन नीति से भरे हुए ऐसे वचन सुन कर आचार्य जी से कुछ न बोले और अपने दल के सहित जय और यश की कामना से सात्यकि के साथ संग्राम करने को चले गये। इधर आचार्य जी ने पाञ्चालों के दल में प्रवेश करके प्रलय मचादी। उन्होंने धृष्टद्युम्न के चार भाइयों को मार डाला। अपने भाइयों का मरना देख सेनापति धृष्टद्युम्न क्रोधित हो नेत्रों से आंसू बहाते हुए आचार्यजी से भिड़ गये और उसी समय बाणों का जाल रच कर वज्र के समान नब्बे बाण उनके शरीर में मार दिये। आचार्यजी बाणों की पीड़ा से मूर्छित होगये। धृष्टद्युम्न उनका सिर धड़ से अलग करने ही वाले थे कि वे होश में आ गये और घोर संग्राम करने लगे। उधर धर्मराज अपने प्यारे

अर्जुन और सात्यकि के समाचार न पाकर अति व्याकुल और भीमसेन के समीप जाकर मोहित हो गये। भीमसेन न्हें धीरज बँधाया फिर उनकी आज्ञा से अर्जुन की सहायता लिए व्यूह द्वार की ओर प्रस्थान किया। भीमकर्मा भीमसेन आते देख कर आचार्यजी ने कहा—हे भीमसेन! इधर से ह में प्रवेश करने की कामना छोड़ दो। तुम्हारे भाई अर्जुन और के शिष्य सात्यकि मेरे सन्मुख युद्ध करना छोड़ कर दूसरे र्ग से गये हैं। इसी प्रकार यदि तुम भी जाना चाहो तो जा कते हो। मेरे आगे तुम्हारी दाल न गलेगी।

यह सुन कर भीमसेन बोले—हे गुरो! हम अर्जुन और सात्यकि हीं हैं। हमारा व्यूह प्रवेश इसी मार्ग से होगा। आपको हम पना शिक्षक समझ कर चोट नहीं करना चाहते। यदि आप मुझे पना शत्रु समझ कर रोकते हैं तो सावधान रहिए। इतना कह र उन्होंने गरुई गदा आचार्यजी के रथ पर फेंकी। आचार्य्य स गदा से बचने का कोई उपाय न देख कर आप तो रथ से कूद पड़े और उसके आघात से रथ सारथी और घोड़े सब चूर होगये। इतने में मौका पाकर भीमसेन व्यूह में घुस कर प्रलय कारी युद्ध करने लगे। अर्जुन ने अपने भाई भीम और सात्यकि की सहायता से बड़ा ही पराक्रम दिखलाया। अन्त में उन्होंने कृष्ण की बताई हुई युक्ति से जयद्रथ का बध किया। अब पाण्डवों के दल में आनन्द का समुद्र उमड़ आया। उधर कौरवपति राजा

दुर्योधन बहुत ही लज्जित और दुखी हुए। वे दन्तहीन काले सांप की भांति सांसें लेते हुए आचार्य्य के पास जा कर कहने लगे—

हे आचार्य्य ! आप ही ने हम लोगों को काल के मुख में झोंका है। हमारे लिए जब देश देश से आये हुए राजा लो[illegible] मारे गये और आप उनको बचा न सके तो हमारे ही जी[illegible] क्या लाभ ? अब हमें इस जीवन की अपेक्षा मृत्यु ही भली है।

इसके उत्तर में आचार्य्य ने कहा—

कटु बैनन के शर मो उर में, अब नाहक मारत हो नरनाथ।
अपराध किये बहु पांडव के, शकुनी अरु कर्ण दुशासन साथ॥
तिसको फल ताप उद्दोत कियो, यदुनायक पायक पारथ हाथ।
हम क्या भीषम को लखि लो, रण सोवत आज यथाहि अनाथ॥

आचार्य्य का शरीरान्त।

जयद्रथ के मारे जाने के बाद रात्रि को भी युद्ध बन्द नहीं हुआ। आचार्य्य ने अपने तेज को संभाला। पाञ्चालों पर बाणों की झड़ी लगादी। राजा द्रुपद और विराट ने उनका साम[illegible] किया। वे तोमर और भालों की वर्षा आचार्य्य पर करने लगे। तब आचार्य्य ने क्रोधित होकर अपने तीखे बाणों से उन दोनों राजाओं को साथ ही यमपुरी में भेज दिया।

यह देख द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि द्रोण आज हमारे हाथ से बच जांय तो हम मानो क्षत्रिय लोक से भ्रष्ट हुए।

तब एक ओर से पाञ्चाल लोगों ने और दूसरी ओर से [अर्]जुन ने द्रोणाचार्य्य पर आक्रमण किया । परन्तु जिस प्रकार [सुर]राज इन्द्र ने दानवों का संहार किया था उसी प्रकार वीरवर [द्रो]णाचार्य्य ने पाञ्चालों का नाश करना आरम्भ किया । उस [सम]य उनके तेज के आगे सभी वीरों का धैर्य्य छूट गया । तब श्रीकृष्णजी ने सोचा कि यदि आचार्य्य के कान में यह बात [प]ड़े कि अश्वत्थामा मारे गये तो वे अवश्य ही शोक से व्याकुल होकर निस्तेज हो जावेंगे । इस बात को उन्होंने अर्जुन से कहा । परन्तु उन्होंने ध्यान नहीं दिया। युधिष्ठिर किसी प्रकार [सम]झाने से सहमत होगये । भीमसेन ने इस युक्ति को जान कर [अव]न्तिराज के हाथी अश्वत्थामा को मार डाला । फिर आचार्य्य [जी] के समीप आ कर चिल्लाने लगे—अश्वत्थामा मारे गये, अश्व[त्थ]ामा मारे गये ।

अपने पुत्र का मरण सुन कर आचार्य्य निस्तेज और हताश [हो] गये किन्तु उन्हें भीमसेन के कथन पर विश्वास नहीं हुआ । अन्त में युधिष्ठिर की साक्षी देने पर उन्होंने भीमसेन के कहने को सत्य समझा । तब वे पुत्र-शोक से व्याकुल होकर और अपने अस्त्र शस्त्र उतार कर समाधि लगा कर बैठ गये। धृष्टद्युम्न अपनी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए हाथ में तलवार लेकर दौड़े और आचार्य्य का शिर काटलिया इस प्रकार हमारे चरित्रनायक का शरीरान्त हुआ ।